कहाँ या क्यों ?

(एक उपन्यास)

डॉ. रामप्रसाद मिश्र

कहाँ या क्यों ?

(उपन्यास)

अनुपम प्रकाशन
नई दिल्ली – 110002
महत्त्वपूर्ण लोकप्रिय एवं
साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशक

कहाँ या क्यों ?

(उपन्यास)

डॉ० रामप्रसाद मिश्र

अनुपम प्रकाशन
3072/5, प्रताप स्ट्रीट, गोला मार्किट,
दरिया गंज, नई दिल्ली-110 002

प्रकाशक :
विजय गोपाल मित्तल
संचालक
अनुपम प्रकाशन
3072/5, प्रताप स्ट्रीट, गोला मार्किट,
दरियागज, नई दिल्ली-110 002

प्रथम संस्करण : 2001
मूल्य : 150.00 (एक सौ पचास रुपये)
आवरण-सज्जा : विजय ग्राफिक्स
शब्द-संयोजन : जय कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110 032
मुद्रक : एच.एस. ऑफसेट प्रेस, नई दिल्ली-110 002

KAHAN YA KYON? *(Novel) by* Dr Ramprasad Mishr
2001 Rs

प्यारी बेटी सूर्यकुमारी त्रिपाठी, एम.ए,
को जिसका जन्म उसी वर्ष में हुआ था
जिसमें इस उपन्यास का ढेरो यादो के साथ!

-रामप्रसाद मिश्र

स्वालोचना

'कहाँ या क्यों?' भाग्यशाली उपन्यास है। 'पथ पर' लाने वाला! इसका 'पथ पर' का गुजराती-अनुवाद भी निकला। इसके बाद 'मिस्टर अटल', 'एक कलाकार', 'कला का छोर', 'जागता गाँव' (एम. फिल. हुआ और परिवर्द्धित 'कुछ खोता, कुछ पाता गाँव' रूप आंचलिक-उपन्यास के रूप में बहुत प्रशसित हुआ), 'एक सड़ी हुई कौम', 'मसीहा' (ईसा पर ऐतिहासिक उपन्यास), 'पिटा हुआ मोहरा', 'पाण्डु-ग्रन्थि', 'बीसवीं सदी' और अब 'दंगे' (लिख रहा हूँ) की लम्बी उपन्यास-यात्रा (कई उपन्यास नष्ट कर दिए पर याद, खासकर 'सूरज की आवारा बेटी' की, आती है और कई बार बेचैन हो जाता हूँ)! 'सब तज साहित्य भज' मंत्र बनाया, नित्य लेखन! 'कहाँ या क्यों?' को भूल गया क्योंकि अन्य उपन्यास ही नहीं, कविता, आलोचना इत्यादि साहित्य की सभी विधाओं में लिखता बेसुध! बस लिखना, ज़माना देखते जमाना; दौडधूप तिकड़म, सम्मान-नियोजन, पुरस्कार-राजनीति, कुछ नहीं। एक नशा, एक जुनून, एक पागलपन!

अब जब इसका मुद्रणशोधन कर रहा हूँ तब चकित हूँ; कथानक की रोचकता, प्रवाह, चित्रण, भाषा देखकर लगता ही नही कि यह प्रथम प्रकाशित उपन्यास है। दुलारेलाल भार्गव का संशोधन, श्रीमती सावित्री दुलारेलाल की प्रशसा, श्री कनु सुणावकर की प्रशस्ति 'लामिज़रेबल' से तुलना एवं गुजराती-अनुवाद, कई लोगों के रोदन इत्यादि की याद आती है, ठीक लगती है। उपन्यास में 'फ़िल्मी टच' की चर्चा हुई थी, उसमें भी कुछ दम लगता है। पर फ़िल्म भी कलाकृति हो सकती है। साहित्य से चलचित्र और चलचित्र से साहित्य प्रभावित होते रहे हैं। तब चलचित्र न देखता था, न समय था, न पैसा। बीच में देखे। अब बिल्कुल नहीं; न समय, न स्वास्थ्य। किन्तु उपन्यास यथार्थ से संपन्न है, कलात्मक है, रोचक है। बार-बार आँसू लाने वाली रचना उत्कृष्ट कलाकृति ही हो सकती है।

स्वतंत्रता के इधर-उधर की शिक्षा-प्रणाली का चित्रण आज अधिक प्रभावी लगता है। पुलिस, कचहरी, धनी, ग़रीब, अपराध, शोषण-प्रपीडन, अपराध-उत्तेजना, सब आज अधिक जीवंत लगता है। वर्तमान की पकड और भविष्य का दर्शन इसे सदाबहार बनाते हैं। युवोचित कुतूहल एवं वैचित्र्य में बासीपन नहीं है। शीर्षक आज बेहद सार्थक लगता है। मनुष्य को परिस्थितियाँ कहाँ-कहाँ ले जाती है? इस प्रश्न में लोग बहुत रुचि लेते हैं। किन्तु, 'कहाँ?' से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है, 'क्यों?' यह 'क्यों' आज अधिक तथ्यपूर्ण, व्यापक और विचारणीय बन चुका है और बना रहेगा। कब तक? देश-दशा देखते कहना पड़ता है, पता नहीं!

समय एक है; अतीत, वर्तमान, भविष्य हमारी सुविधा के सोपान है। मानव एक है; उसके धनी-निर्धन, ऊँचे-नीचे, शिक्षित-अशिक्षित, प्राच्य-पाश्चात्य इत्यादि रूप प्रकृति के परिणाम मात्र हैं, परिस्थितियों के परिणाम मात्र हैं। 'कहाँ या क्यों?' इन गहन बिन्दुओं पर विचार का स्फुरण भी प्रदान कर सकता है।

24.10.2001 *—रामप्रसाद मिश्र*

14, सहयोग अपार्टमेन्ट्स
मयूर विहार-1, दिल्ली-110091

हेमचन्द्र अपनी विचार-शृंखलाओं से कुछ मुक्त हुआ, तो देखा कि अंधेरा काफी हो गया है और बादल भी बरसने की तैयारी में है। देखा, सामने सडक पर बहुत दूर तक कोई व्यक्ति न था। क्षण भर को जैसे निस्तब्धता, मेघ-नाद तथा विद्युत-कलाप की सम्मिलित शक्तियों ने उसके हृदय को अज्ञात रूप से डरा दिया। पीछे देखा--कोई न था।

अपनी पुरानी साइकिल को जी-भर कोसते हुए जोर लगाया। किन्तु हवा का रुख विपरीत था। बूँदे भी गिरने लगी। कॅपकँपी देह को विचलित किए दे रही थी। हवा का वेग बढा, साथ ही पानी का भी। बादलों का गरजना, बिजली का चमकना और अन्धकार सभी साम्राज्यवादी बन गए। सडक दिखाई ही न देती थी। न आगे कुछ सूझता, न पीछे। थका, निराश और क्लान्त हेमचन्द्र रुक गया। बिजली की चमक ने एक पेड़ की शरण दिला दी। उसी के तने से लगकर ठिठुरते हुए बैठ गया।

उसे अपने ठिठुरने की चिंता न थी। चिन्ता थी कल सबेरे की। इधर देखा, पानी मूसलधार गिरने लगा है और विशाल बरगद भी अधिक देर तक उसे न बचा पाएगा। हवा का वेग कम हो गया था। ठिठुरन कम हो गई थी। गठरी बना बैठा था। साइकिल तने से लगी खड़ी थी।

पानी बरसना कुछ कम हुआ। साथ ही, हेमचन्द्र की ऑखों का खुला रहना भी कम हो गया। वटराज की कृपा से वह धीरे-धीरे ऊँघने लगा। इधर ॲधेरा अपना तम-लोक विस्तृत करने की चेष्टा में सन्नद्ध था, उधर हेमचन्द्र का स्वप्नलोक अपना क्षितिज व्यापकतर बना रहा था।

सहसा एक प्रचण्ड रव ने उसकी आँखे खोल दीं। हड़बडाकर ज्यो ही उठने लगा, गिर गया। उसने अपने 'हाय. ' के साथ ही निकट से ही आती हुई एक कोमल चीख सुनी। कुछ समझ न सका। किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। अँधेरा था ही। देखा, बरगद के नीचे की ओर सड़क के बाएँ तरफ, पानी की चमकती धार। जान गया कि वह नदी के किनारे वाले बरगद के नीचे है। एक बड़ी काली-सी चीज़ दिखाई दी। डर गया, काँपने लगा, परन्तु भय मे भी अर्थ का प्रभाव पूर्णत: समाप्त नही होता। उसने साइकिल को टटोला। वह न मिली। एक क्षण में ही भय, विषाद ओर ग्लानि के आधिक्य में वह चीख ही ता पडा--हाय, मै लुट गया।

किन्तु वहाँ सुनने वाला कौन था? हाँ, कुछ क्षण बाद वह स्वयं परो से जमीन टटोलता हुआ आगे बढा। मालूम हुआ कि कोई लोहे की-सी चीज पड़ी है। हाथ से छूकर मालूम किया। साइकिल ही थी। खिल उठा। साथ ही, क्षण-भर पूर्व की भावाकुलता के लिए अपने पर थोड़ा-सा विद्रूप भी किया। साइकिल को खींचना चाहा। किन्तु खींच न सका। साइकिल को जैसे कोई पकड़े हुए था। काँप उठा। किन्तु हाथ साइकिल से न हटे।

फिर वही हल्की-सी पीड़ा-ध्वनि सुनी। इधर साइकिल, उधर निकट ही ऐसी पीड़ा-ध्वनि। कुछ समझ न सका। हिम्मत से जोर लगाकर साइकिल को खीचा। साइकिल का एक पहिया, ऐसा प्रतीत हुआ, काली आकृति क नीचे दब गया है। हेमचन्द्र ने साहस करके काली आकृति को घूरकर देखा। मालूम हो गया। यह कोई मोटरकार थी, पूरी तरह से ध्वस्त, वटराज से सघर्ष करने के कारण निष्प्राण-सी पड़ी हुई। अपनी साइकिल का शाक हुआ। अज्ञात रूप से ही सही, आज विदित हुआ कि उसे साइकिल से प्रेम था।

हेमचन्द्र का कौतूहल और विषाद कम न हुआ। वह कार के दाहिने ओर सडक पर, दो कदम चला। उसका पैर किसी मानव-शरीर से टकराया। हल्की-सी कराह-जैमी ध्वनि फिर आई और बन्द हो गई। हेमचन्द्र की स्थिति अनिर्वचनीय कौतूहल और विषाद से इतनी प्रभावित हो गई कि वह कुछ देर सोच ही न सका कि क्या बात हो सकती है, और वह क्या करे? कुछ क्षण बाद उसे सन्तुलन मिला।

सहानुभूति मनुष्य की शाश्वत विभूति है। हेमचन्द्र ने हाथ से देखा कि

कौन है। स्पर्श पाते ही उसका शरीर कुछ सिहर-सा उठा। किसी स्त्री को उसने आज सम्भवत: पहली बार ही इस प्रकार छुआ था। स्त्री तरुण थी। हेमचन्द्र को तुरन्त कर्तव्य का बोध हो गया। उसने उस भीगती तरुणी को उठाकर बरगद के नीचे लिटाने का उपक्रम किया। निकट ही एक सफेद चीज पड़ी दिखाई दी। हेमचन्द्र ने उठाई, देखा बैट्री थी। खिल उठा। तरुणी को उठाया और पेड़ के तने के निकट लिटा दिया। सिर के नीचे अपनी जाँघ रखी और हाथ से सिर सहलाने लगा। तरुणी का शरीर घाव-रहित मालूम पड़ता था। श्वास भी चल रही थी। हेमचन्द्र को अपूर्व सन्तोष और प्रसन्नता मिली। पानी भी प्राय: रुक गया था। रात्रि भी आधी रह गई थी।

हेमचन्द्र को बैट्री का ध्यान आया। जलाकर देखा। तरुणी अद्वितीय सुन्दरी थी। चहरा जैसे कुन्दन का मन्द-सुरभित कमल था, जो इस समय कुम्हला गया था। कीमती साड़ी और बहुमूल्य आभूषण देखकर हेमचन्द्र समझ गया कि यह तरुणी, जिसे अभी किशोरी कह लेने में अधिक हर्ज नहीं, बड़े घराने की लड़की है। उनके मन के किसी अज्ञात कोने से एक अपरिचित हर्ष की तरंग उठी। वह मुग्ध-सा उसकी ओर देखता रहा। जाँघ पर सिर, एक हाथ से सिर सहलाते और दूसरे से बैट्री जलाए पता नहीं कब तक उसे देखता रहता, यदि इसी बीच में वह आँखें खोल न देती।

सुन्दरी ने ज्यों ही आँखे खोलीं, हेमचन्द्र की आँखे नीची हो गईं। वह कुछ न समझ सकी। हेमचन्द्र बैट्री अब भी जलाए था। उसे बुझाने का स्मरण ही न था। वह इसी लज्जा में गड़ा जा रहा था कि आपत्तिग्रस्त वह देवी अपनी ओर घूरने वाले मुझको क्या कहेगी?

सहसा उसका ध्यान भंग हुआ। कुछ दुर्बल किन्तु कोमल ध्वनि में सुनाई पड़ा—मैं कहाँ हूँ? आप कौन हैं? मैं ऐसे क्यों हूँ? आप कहाँ...?

हेमचन्द्र को सन्तोष हुआ कि युवती की स्थिति ठीक है। किन्तु प्रश्नों के इस क्रम ने उसे हँसा दिया। बीच में ही बोल पड़ा—आप घबराइए नहीं! शान्त रहिए! सब ज्ञान हो जाएगा।

हेमचन्द्र की वाणी में शक्तिमय अनुभूति थी। सुन्दरी को क्षण भर जैसे यह स्मरण ही न रहा कि उसे क्या कहना है। लगा यह व्यक्ति जो भी कहता है ठीक कहता है, और जो भी कहेगा, ठीक कहेगा। फिर भी, कुछ रुक कर बोली—मैं तो अपनी कोठी को जा रही थी! यह..

हेमचन्द्र--आपकी मोटर इस बरगद से लड गई। आपको प्रभु ने बचा लिया, नहीं तो एक फुट फिसलने पर ही नीचे नदी मे गिर जातीं। सन्तोष है, खुशी है कि आपके अधिक चोट नही लगी और आप स्वस्थ है।

हल्की-सी मुस्कान न जाने कहाँ से आकर सुन्दरी के अधरों पर खल गई कानों तक दौड़ गई। बोली—यह कौन-सा स्थान है?

हेमचन्द्र—यह ज्ञान नहीं। लेकिन राजपुर यहाँ से दो मील है।

सुन्दरी—आप कहाँ रहते हैं?

हेमचन्द्र—राजपुर के निकट मनोहरपुर में!

सुन्दरी—क्या करते है? क्या नाम है? आप...

हेमचन्द्र हँसते हुए बोला—इतने प्रश्न एक-साथ पूछने पर क्रम-विस्मरण सम्भव है। मै शायद सिलसिले से उत्तर न दे सकूँ। इसलिए एक-एक करके ही पूछिए। घबराइए नहीं! मैं मनोहरपुर इण्टर कॉलेज मे अध्यापक हूँ, नाम है हेमचन्द्र। क्या यही सब आपसे पूछ सकता हूँ?

सुन्दरी कुछ लजाते हुए बोली—मै राजपुर में ही रहती हूँ। मेरे पिता सर दिग्विजयनाथ को आप जानते होंगे? मेरा नाम सुलोचना है।

हेमचन्द्र चकित रह गया। सर दिग्विजयनाथ उसके गाँव के भी स्वामी थे। राजा थे। काई सो गॉवो के मालिक। वह कुछ सोच ही रहा था कि सुलोचना ने पूछा—आप शायद कवि हैं?

हेमचन्द्र—नहीं तो.. .यो ही .क्यों?

सुलोचना—मेरे प्रश्न करने के ढग से भी विचित्र और मजेदार तो आपके उत्तर देने की शैली है! क्या मैं गलत कह रही हूँ? वह हँसी।

हेमचन्द्र कुछ न बोल सका। सुलोचना ने ही कहा—आपकी कविताए मै प्राय: देखा करती हूँ। एक बार आप मेरे कॉलेज में पधारे थे। आपका गीत...हाँ, 'वेदना के नीड़ में मन-विहग का व्याकुल बसेरा' मुझे अब तक याद है।

यह कहकर सुलोचना, मन-ही-मन लाज प्रकट करते हुए, हेमचन्द्र की जाँघ से उठ बैठी। उसकी समझ मे न आया कि इतनी बात-चीत वह जॉघ पर ही सिर रखे कैसे कह गई? बोली—बेट्री बुझा दीजिए। देखिए, चॉद निकला हुआ है।

हेमचन्द्र ने उसकी ओर देखते हुए कहा—"हाँ, चाँद निकला हुआ

है!'' रुक गया। समझ न सका कि वह ऐसी एक-ही स्थिति में अब तक क्यों बना रहा। बेट्री बुझाकर चुपचाप बैठ गया।

सुलोचना ने बेट्री लेकर मोटर को देखा। बहुत हानि हुई थी। साइकिल का भी उसने, और उससे भी पहले हेमचन्द्र ने देखा। नष्ट हो चुकी थी। सुलोचना बोली–साइकिल आपकी है? क्षमा कीजिए, बड़ी हानि...

हेमचन्द्र–बड़ी हानि तो मोटर की हुई है! साइकिल तो वैसे भी जीर्ण थी, कोई बात नहीं जो समाप्त हो गई! और सबसे बड़ी बात तो आपकी रक्षा है, जिसके लिए ईश्वर को धन्यवाद है।

सुलोचना–मैं आपको साइकिल...

हेमचन्द्र–यदि आप न दोगी, तो मैं क्षति का दावा न कर दूँगा।

सुलोचना–पर मैं तो पहले ही...

हेमचन्द्र–बस कीजिए! आपको स्वस्थ देख रहा हूँ। मुझे कुछ और न चाहिए!

वह कहते-कहते रुक गया।

सुलोचना ने हाथ की घड़ी पर दृटि डाली। बोली–ओह, पाँच बज गए। अब तो मुझे घर चलना चाहिए। दो मील ही तो है। इस कार को नौकर ठेल ले जाएँगे। आप भी चलिए न!

हेमचन्द्र–मुझे संस्था में पहुँचना है। अब तो घर भी न जा सकूँगा। सीधे जाऊँगा। प्रिंसिपल विचित्र...

सुलोचना–कालीपद ही तो प्रिंसिपल है आपके? कालीपद मुखर्जी? मैं उनसे...सहसा लजाते हुए रुक गई। बोली–मेरा अनुरोध आपको पूरा करना चाहिए!

हेमचन्द कुछ न बोल सका।

सुलोचना–बोलिए!

हेमचन्द्र–मैं दोपहर को आपके दर्शन करूँगा, अवश्य..

सुलोचना–जो आज्ञा! किन्तु दर्शन करने की बात मैं नहीं समझ सकी। मैं कोई पाषाण की प्रतिमा या देवी थोड़े ही हूँ।

हेमचन्द्र–देवी केवल पाषाण की ही नहीं हुआ करती..।

वह रुक गया। प्रतीत हुआ, मानो कुछ अधिक आगे बढ़ गया। किन्तु सुलोचना के अपेक्षाकृत स्वच्छन्द हास की धारा में उसके सब भाव बह

गए। वह बोली--आप तो रुक गए! मुझे आज ही मालूम हुआ कि मैं भी एक देवी हूँ!...देखिए, मैं छात्रा हूँ। आप प्राध्यापक हैं। आइएगा अवश्य।

□□□

मनोहरपुर इण्टर कॉलेज एक बड़ी संस्था थी। कोई दो हजार छात्र दो शिफ्टो में पढ़ते थे। पहली शिफ्ट साढ़े ग्यारह तक और दूसरी चार तक चलती थी। बड़े दर्जे सबेरे लगते। दूर-दूर के विद्यार्थी पढ़ने आते थे। गाँव बड़ा न था। लेकिन खुला स्थान और प्राकृतिक सौन्दर्य विद्यमान था। इसलिए कॉलेज के संस्थापक तथा संचालक श्री स्वरूपनारायण शास्त्री ने कस्बा न होने पर भी मनोहरपुर में ही संस्था खोल दी थी। निकट ही एक बंगले में सपरिवार रहते थे। संस्था के प्रिंसिपल कालीपद मुखर्जी भी निकटस्थ मकान मे रहते थे।

वाटराज की शरण छोड़ने पर हेमचन्द्र बच्चों को भाँति सिर पर पैर रखकर चला। साइकिल थी नहीं, सम्भवतः सदा के लिए चली गई थी। समय निकट था। राजपुर के पास ही पहली घंटी सुनी। प्राण सूख गए। दस मिनट में डेढ़ मील कैसे जायेगा? खैर, दौड़ा। रास्ते में लड़के भी इतने व्याकुल न दिखाई पड़े, जितना वह। तो भी देर हो ही गई। कार्यालय मे पहुँचने पर मालूम हुआ कि अध्यापकों की उपस्थिति-अनुपस्थिति का रजिस्टार प्रिंसिपल साहब के ऑफिस में चला गया है। ऐसा नियम ही था। हेमचन्द्र के प्राण सूख गए। प्रिंसिपल साहब उसे दूसरा काल ही मालूम पड़ते थे। फिर भी न जाने पर अनुपस्थिति का भय था। अतः बेचारा सरपट प्रिंसिपल के ऑफिस की ओर चला।

प्रिंसिपल साहब अंग्रेजी सभ्यता के प्रतीक तथा उसी की एक विलक्षण देन थे। समय पर आप आवश्यकता से अधिक ध्यान देते थे, 'इंडियन-टाइम' की भावना के सख्त खिलाफ़! स्वयं भी थोड़ा-बहुत नियमित रहने का प्रयास करते थे। अग्रेजी के एम. ए. थे। यहाँ उन्हें वेतन की शिकायत थी। विश्वविद्यालय में पौवा भिड़ा सकते थे, पर यहाँ ऊपरी आमदनी अच्छी थी और खर्च कम था। वेतन सीधे बैंक पहुँच जाता था। आपकी अभिव्यक्ति का माध्यम अंग्रेजी थी।

हेमचन्द्र ऑफिस में पहुँचने के पूर्व चिक की आड़ से झाँका। देखा, प्रिंसिपल साहब घड़ी से उलझे हैं। आश्चर्य हुआ। आज्ञा माँगी। प्रिंसिपल साहब हड़बड़ाकर अपने आसन पर बैठ गए। बोले कुछ नही, जैसे हेमचन्द्र की ध्वनि अभी उनके श्रुति-कक्षों में प्रवेश न पा सकी हो। हेमचन्द्र ने डरते हुए फिर आज्ञा माँगी। अबकी बार प्रिंसिपल ने आँखे उठाईं और सिंह-दृष्टि से कुछ उचककर, कुछ तिरछे होकर हेमचन्द्र को देखा, मानो उसे पहचानते ही न हों। हेमचन्द्र ने तेहराया। तब कहीं घर्राई हुई ऑक्सफोर्ड-उच्चारण की प्रतिनिधि ध्वनि कक्ष भर में गूँज सकी- एस....।

हेमचन्द्र अन्दर आया, नमस्कार किया। उसका कर--बद्ध अभिवादन प्रिंसिपल को खटका। तो भी, इस विषय में कुछ न बोले। अंग्रेजी में कहा--क्या काम है?

हेमचन्द्र--क्षमा कीजिएगा, कुछ देर हो गई....।

प्रिंसिपल--देर होना प्रशंसा की चीज नहीं होती। क्या समय है?

हेमचन्द्र को आज पहली बार ही लेट होने का अनुभव हुआ था। जानता था, अन्यत्र ऐसा भीषण क्रम नहीं है। फिर भी सकपकाते हुए बोला--श्रीमान, मैं कभी लेट नहीं होता! आज पाँच मिनिट...।

प्रिंसिपल--जाइए, अब लेट न होइएगा।

हेमचन्द्र की जान बची। प्रसन्न होकर कक्षा की ओर चला।

उसका मन आज विचित्र दुविधा में पड़ा था। काम करता, पर हृदय कहाँ है, समझ न पाता। पढ़ाने पर भी प्रभाव पड़ा। रात्रि में जागने के कारण सुस्त था। आँखों में नींद थी। इण्टरवल में सो गया। इधर बारहवीं श्रेणी मे पढाना था। प्रिंसिपल साहब राउण्ड भरते हुए बारहवें दर्जे के उस विभाग में आये। कक्षा में बड़ा शोर-गुल मचा था और विद्यार्थी फिल्मी गाने गा रहे थे। प्रिंसिपल अन्दर घुसा। उसका आतंक था, स्थिति बदल गई। पूछा--किसका पीरियड है?

किसी छात्र ने बतलाया। प्रिंसिपल का मुँह बन गया। इतने में ही हेमचन्द्र हकबकाता हुआ कक्षा में घुस आया। वह पहले प्रिंसिपल को न देख पाया था, देखा तो पीला पड़ गया। यह अनुशासन-हीनता प्रिंसिपल को भावावेश में बहा ले गई। कक्षा में ही बोले--आप बहुत लापरवाह हैं। सस्था मे अनुशासन का बड़ा महत्त्व होता है। आप पर कार्यवाही होगी!

यह कहकर वह तीर की भाँति चश्मा सम्हालते हुए कक्षा से निकल गये! ऐसा तिरस्कार और अपमान हेमचन्द्र को बुरा लगा। विद्यार्थी उस पर श्रद्धा रखते थे। ऐसे अपमान के विष का घूँट शीघ्र न पी सका। विद्यार्थी भी समझ गये। एक बोला–स्वयं दस मिनट लेट पीरियड लेते हैं!

दूसरा–बड़ा बना हुआ है, घुटा हुआ गुरु घण्टाल।

तीसरा–मिस्टर बनर्जी कभी समय पर पीरियड नहीं लेते, मिस्टर चक्रवर्ती पीरियड के पीरियड गोल कर जाते है! तब....

ब्रजेन्द्रशकर सस्था का सबसे प्रभावशाली विद्यार्थी था। स्वरूपनारायण शास्त्री हों या मिस्टर मुखर्जी, मिस्टर बनर्जी हों या मिस्टर चक्रवर्ती–सभी उससे मन-ही-मन डरते थे। अनुशासन में ढील न करता। फिर भी, यदि उसे अत्याचार प्रतीत होता, तो विकराल हो जाता। बोला–वे लोग या तो मुखर्जी के रिश्तेदार हैं या प्रान्त भाई। ऐसे व्यक्ति को प्रिंसिपल बनने का कोई नैतिक अधिकार नहीं।

ब्रजेन्द्रशंकर की बात नेता की बात थी। सारी कक्षा गूँज गयी। हेमचन्द्र कुछ समझ न सका, क्या हो रहा है। आज मस्तिष्क विचित्र स्थिति में था। कक्षा मे ब्रजेन्द्रशंकर कह रहा था–मास्टर साहब इस कॉलेज के सबसे चरित्रवान और श्रेष्ठ अध्यापक हैं। उनका अपमान हम नहीं सहन कर सकते!

हेमचन्द्र–इस अभागे देश में सर्वत्र यही स्थिति है! आप लोग शांत रहिए।

ब्रजेन्द्रशंकर–मास्टर साहब, साहस के अभाव में आप स्वाभिमान की बलि देते हैं, यह मैं न जानता था। नौकरी आत्म-सम्मान के सामने क्या चीज है? आप घबरा क्यों रहे हैं? इस तरह कालीपद एक दिन आपको गालियाँ देगा।

हेमचन्द्र को भी जोश आ गया, किन्तु परिस्थितियों ने उसे एक साँचे में ढाला था। अत्याचारी प्रिंसिपल के प्रति छात्रों में जोश की मात्रा बढ़ रही है, यह जान गया। जब पढ़ाकर बाहर निकला, चपरासी की आवाज सुनाई दी–हेमचन्द्र बाबू, आपको साहब बुला रहे हैं।

वह सूख गया, अपनी भावुकता पर पछताता ऑफिस पहुँचा। अबकी प्रिंसिपल साहब की त्यौरी कुछ अधिक गम्भीरतापूर्वक चढ़ी थी। जाते ही

कहा छुट्टी के बाद आप कालेज के संचालक महोदय से मिलेंगे

हेमचन्द्र—यदि शाम को मिलूँ?

प्रिंसिपल—क्यों? क्या कहीं तार देना है?

हेमचन्द्र—तार नहीं देना है, एक जगह जाना है। वायदा कर चुका हूँ।

प्रिंसिपल—कहाँ जाना है? शाम को शायद आप न लौट सकें।

हेमचन्द्र—अवश्य लौट आऊँगा।

प्रिंसिपल—शाम को ही सही। मिल अवश्य लीजिएगा। जाइए।

हेमचन्द्र चला आया। प्रिंसिपल का व्यवहार उसे बहुत बुरा लगा। बाहर निकलने पर ब्रजेन्द्रशंकर मिला। बोला—कालीपद से डरिएगा नहीं। मैं सब सुन रहा था।

हेमचन्द्र डर गया था। एक बार के जोश का परिणाम ही असाधारण था। अतः ब्रजेन्द्रशंकर को अधिक न बोलने दिया। स्वयं भी कुछ न बोला। शीघ्र ही अपने काम में लग गया। किन्तु उसे यह ज्ञात न था कि चिक की ओट से प्रिंसिपल ब्रजेन्द्रशंकर की बातें सुन चुका था।

सुलोचना घर आई। पिता कौंसिल की बैठक में भाग लेने गए थे। घर पर अकेली ही थी। मातृहीन, परिवारहीन तथा एकाकी जीवन ने कुछ मननशील बना दिया था। ऐश्वर्य के वातावरण ने कोमलता को समाप्त नहीं कर पाया था। धनी पिता की अकेली सन्तानों में प्रायः जो उच्छृंखडलता दिखाई पड़ती है, वह उसमें नहीं के बराबर थी। साहित्य और अन्य ललित कलाओं से प्रेम था। सुन्दर चित्र बनाती थी, कभी-कभी कुछ लिखती भी थी।

किन्तु आज जैसे उसका कहीं विशेष कला से साक्षात्कार हो गया था। प्रेम सबसे बड़ी कला है।

पर वह एकाग्रता कहाँ थी, जो कला की सफलता का रहस्य है। अतः वह किंकर्तव्यविमूढ दशा मे बैठी रही, हेमचन्द्र की बाट जोहती रही। बहुत-से प्रश्न पूछने थे। क्रम लगा रही थी। कलाकार की महत्ता को कला-प्रेमी भली भाँति समझता है। कला आत्मा के रस की अभिव्यक्ति है।

संवेदनशील कलात्मक आत्मा की ऐक्यमयी अनुभूति बाह्यतः पृथक होने पर भी कला-प्रेमी और कलाकार को अपृथक कर देती है।

सुलोचना के पास हेमचन्द्र की कविताओं का एक संग्रह था। किन्तु आज पढने की इच्छा होने पर भी न पढ़ रही थी। चित्र बनाने की इच्छा होने पर भी न बना पा रही थी। गीत लिखने की इच्छा होने पर भी न लिख पा रही थी। कुछ गुनगुनाने की इच्छा होने पर भी न गुनगुना पा रही थी। रात्रि में कितना सोई थी? गैलरी में जहाँ आरामकुर्सी पड़ी थी, शीतल और दूर-दूर का समीरण आ रहा था, जा रहा था। सुलोचना को झपकी आने लगी, और पता ही न चला कि वह मीठी नींद सो रही है।

उधर हेमचन्द्र को जैसे ही छुट्टी मिली, सीधे राजपुर की ओर चल पड़ा। भूख-प्यास का ध्यान ही न था। डेढ़ मील पैदल चलकर विचारों और भावों में झूमता महल के सामने आया। दरबान से कहा। पहले तो उसने प्रश्नो की झड़ी लगा दी, किन्तु कुछ जानने पर एक दूसरे व्यक्ति को अन्दर भेजा। दस-बारह मिनट मे आकर उस व्यक्ति ने बताया कि मेम साहब अभी सो रही हैं।

मेम साहब शब्द से हेमचन्द्र के हृदय को बड़ी निराशा हुई। किन्तु इससे भी बढ़कर कष्ट उसे सुलोचना के सोने का हुआ। उसने कल्पना में अपनी प्रतीक्षा के जिस उमंग के भव्य प्रासाद का निर्माण किया था, वह एक ही धक्के में धराशायी हो गया। सोचा, यहाँ आने में भावुकता की। सुलोचना और उसकी कोई तुलना नही है।

यहां बुलाने का उद्देश्य कुछ आर्थिक सहायता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? क्या ऐसी कोई सहायता वह स्वीकार कर सकता है? उसका हृदय लौट पड़ने के लिए व्यग्र हो उठा। फिर भी, कुछ रुका। दरबान से कहा—जरा अब देख आइए कि जगी या नहीं ?

दरबान ने आँखो में ही मुसकारते हुए कहा—भैया, बड़े लोगों की बड़ी बातें होती हैं। आज दुर्घटना से बची हैं, किसी से नहीं मिलेंगी। तुम बेकार क्यों परेशान हो रहे हो?

हेमचन्द्र खादी का मोटा कुरता और उसी की धोती पहने था। हाथ से काते सूत की धोती देखकर ही दरबान के हृदय में यह अप्रत्याशित आत्मीयता जागृत हो उठी थी। हेमचन्द्र को इस उत्तर से बहुत सन्तोष न

हुआ। उसने कहा—मैं बुलाये बिना नहीं आया हूँ!

दरबान ने अनुभव के लहजे में कहा—बुलाने पर भी यहाँ यही चलता है। दो-तीन घंटे रुकिये। जगने पर पुछवा लूँगा। अगर हुकुम हुआ, तो आपको अन्दर जाने की सुविधा हो जाएगी। चिंता न कीजिए, तब तक घूम-घाम आइये।

तुम और आप का यह सिलसिला हेमचन्द्र की समझ में न आया। उस अपने इस प्रकार के अपमान के मूल में सुलोचना दिखाई पड़ी। बहुत दुखी हुआ। कॉलेज की घटनाओं का स्मरण भी था। उनके मूल में भी सुलोचना को रखकर प्रभावित बुद्धि ने संतोष किया। नौकरी के खतरे में होने की बात का स्मरण आते ही वह विह्वल हो उठा। एक बार उस विशाल प्रासाद की ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखा, फिर भारी पाँवों चल पड़ा।

□□□

घर आने पर हेमचन्द्र को मालूम हुआ कि मुन्नू कहीं खेलने गया है। मुन्नू ग्यारह वर्ष का एक अनाथ लड़का था, जिसे हेमचन्द्र ने अपने यहाँ रख लिया था। हेमचन्द्र अकेला था, गाँव के अन्य लोगों से उसे कोई विशेष लगाव न था। स्वभाव से एकान्तप्रिय था। अन्तः मुन्नू के रखने में परोपकार के परमार्थ के अतिरिक्त मन बहलाने का स्वार्थ भी कुछ न कुछ अस्तित्व रखता था। आज पहली बार मुन्नू पर गुस्सा आया। उसने अपने मामूली, कच्चे किन्तु स्वच्छ घर में प्रवेश किया। कुछ फल रखे थे, दूध के साथ खाये और समय काफी होने के कारण भोजन बनाने का विचार त्याग कर चारपाई पर लेट गया। लेटते ही नींद आ गई।

इतने में ही मुन्नू खेलकर आया। उदास था। हेमचन्द्र को सोते देखा, तो चुपचाप चबूतरे पर जा बैठा। आकाश की ओर देखता रहा।

हेमचन्द्र को नींद में भी यह विस्मृत न हो पाया था कि उसे स्वरूपनारायण शास्त्री के यहाँ जाना है। अतः वह शीघ्र ही उठ बैठा। भोजन न बनाने के कारण कुछ भूखा था। किन्तु उसे मुन्नू का अधिक ध्यान था। उठते ही आवाज दी—मुन्नू !

मुन्नू चबूतरे पर बैठा ही था। किन्तु न जाने किस ध्यान में लीन था कि सुन न सका। हेमचन्द्र ने उसकी भूख का स्मरण करते हुए फिर बुलाया। अबकी मुन्नू ने उसकी ओर देखा।

हेमचन्द्र ने पूछा—भूखे तो नहीं हो?

मुन्न—नहीं!

हेमचन्द्र—उदास क्यों हो? बताओ, बेटा!

मुन्नू की आँखों में आँसू आ गए। वह कुछ बोला नहीं। हेमचन्द्र ने उसका सिर सहलाते हुए पुचकार कर बार-बार पूछा, तब कहीं उसने बतलाया—बाबूलाल बाबा मुझे दूसरों का टुकड़खोर कहते है।

बाबूलाल मुन्नू के चचेरे भाइयो के बाबा थे। हेमचन्द्र भी इसी वंश का था। उसने कहा—वाह, इतनी-सी बात पर तुम इतना सोच रहे हो? वह तो मूर्ख है। मूर्खों की बात पर ध्यान ही न देना चाहिए, मैंने तुम्हें यह बताया था कि नहीं?

मुन्नू—बताया था। और भालूवाली कहानी भी बताई थी।

हेमचन्द्र—तुम भूखे मालूम होते हो?

मुन्नू—भूखा तो नहीं हूँ। भुट्टे चबाए थे, दूध पिया था लेकिन भैया, इलायचीदाना बहुत मीठा होता है।

हेमचन्द्र को हँसी आ गई। उसने मुन्नू को कुछ पैसे दिए और बता दिया कि वह अभी बाहर जा रहा है, मुन्नू घर पर ही रहे। इसके बाद वह चला गया। मुन्नू इलायचीदाने लेकर घर आया। उसके अनेक साथी भी आए। चबूतरे पर खेल और शोरगुल होता रहा। शाम हो गई, पर यहाँ का शोरगुल और खेल समाप्त न हुआ। इतने में ही एक मोटर-कार आकर घर के सामने खड़ी हो गई।

खेल बन्द हो गया। लड़के कार की ओर बढ़े। कोई निकट जाकर उंगली से छूने लगा, कोई उसमें मुँह देखने लगा, तो कोई दूर से ही मीमासा करने लगा। कार के अन्दर से सुलोचना निकली। पूछा—श्री हेमचन्द्रजी का घर यही है?

लड़के अवाक रह गये। मुन्नू दूर से बोला—आप मेम-साहब हैं!

सुलोचना—अच्छा, हेमचन्द्र का घर यही है?

मुन्नू—हाँ, भोंपा बजवाइए!

सुलोचना–वह हैं?

मुन्ने–नहीं, भोंपा बजवाइए!

सुलोचना लौट चली। बाबूलाल उधर से आ रहे थे। सुलोचना को पहचानते थे। तीर बन कर प्रमाण किया।

बोले--सरकार कैसे...?

सुलोचना-जरा श्री हेमचन्द्रजी से काम था। वह हैं ही नहीं।

बाबूलाल-सरकार, उनकी न चलाइए! कवि ठहरे! अपने आगे किसी को कुछ गिनते ही नहीं! अन्दर पड़े रहते हैं और कह देते हैं कि कह दो, नहीं है। और यह लौंडा.. मुन्नू तो बस गजब ही है।

बाबूलाल एकाएक रुक गए। उन्हें प्रतीत हुआ कि वह आवश्यकता से अधिक बढ़ जा रहे हैं। मेम साहब कहीं डाँट न बैठे।

सुलोचना राजपुर लौट पड़ी। उसे बड़ी दुःख हुआ। सोचा, 'एक तो आप वायदा करके मेरे यहाँ नहीं आए, दूसरे मेरे आने पर भी घर से कहला दिया–नहीं हैं! यह अनुचित नहीं, तो क्या है?' इन्हीं विचारों में व्यस्त घर पहुँची। चित्त नहीं लग रहा था।

सहसा कुछ याद आया। नौकरों से पूछना शुरू किया कि दोपहर में कोई आया तो नहीं था? नौकरों, विशेषकर दरबान ने अनेक व्यक्तियों का उल्लेख किया और उन्हीं में वेशभूषा के वर्णन द्वारा उसे ज्ञात हो गया कि हेमचन्द्र आया था। उसने दरबान को बहुत डाँटा कि जब उन्होने बुलाने की बात कही थी, तो क्यों उसे न जगाया। दरबान माफी माँगने लगा। सुलोचना ने आदेश दिया कि अब कभी उन्हें मत रोकना। उसे अपने और अपने सोने पर भी क्रोध आया किन्तु हेमचन्द्र की निष्ठुरता का विस्मरण न कर सकी।

□□□

राजवैद्य आयुर्वेदाचार्य, साहित्य-रत्न पंडित स्वरूपनारायण शास्त्री, काव्यतीर्थ, वैद्यशास्त्री, व्याकरणाचार्य बड़े ही मँजे हुए व्यक्ति थे, जिनका अनुभव विशाल और व्यक्तित्व परिष्कृत था। आपके पिता एक स्थानीय जमीदार के कारिन्दा थे। जब स्वरूपनारायण शिशु थे, तभी वह चल बसे। स्वरूपनारायण

का बचपन केथा-बेलों पर बीता। किन्तु भाग्य जारदार था। कुछ बड़े होने पर एक वैद्यराज के यहाँ नौकर हो गये। दवाएँ कूटते-कूटते ही राजवैद्य और न जाने क्या-क्या बिना किसी परिश्रम के ही हो गये। चलते-पुरजे थे। कई दवाखाने खोल दिए। दो-चार अंग्रेजी दवाइयों के नाम रट लिए। उन्होंने जादू का काम किया। सिविल सर्जन के बाद आपका ही स्थान माना जाने लगा। एक पंडित जी के पुत्र को अच्छा करके उनसे भागवत का मर्म समझ लिया। फिर क्या था। प्रवचनों के दौर चलने लगे, जिनमे हजारों आने लगे। शास्त्री जी मालामाल हो गए। दवाखानों ने नाम और दाम दोनों दिए, कथा और प्रवचनों ने उनमें दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि कर दी। कुछ तरी आने पर यह विद्या मंन्दिर खोल दिया। बहुत-सा चन्दा वसूल कर डाला। कॉलेज की इमारत बनने से पहले आपका शानदार बगला बन गया और मोटर कार भी आ गई। प्रान्त के गवर्नर ने विद्या मन्दिर का उद्‌घाटन किया और छह-सात शब्दों मे शास्त्री जी की प्रशंसा भी कर दी। शास्त्री जी का रोब और प्रभाव बढ़ गया। जब से कॉलेज बना, नि:स्वार्थ सेवा के परमार्थ का जोर चला। साथ ही चन्दा और विद्यार्थियों की फीस का भी सुन्दर क्रम रहा। अब दवाखाने और प्रवचन पीछे पड़ गए। कॉलेज बड़े मार्के का साबित हुआ।

सन् 1937 के कॉग्रेसी-शासन में शास्त्री जी घोर कॉंग्रेसी हो गए और एम. एल. ए. होकर धन्य बने। तब से आपका विशेष मान था। शास्त्री जी राजनीति के महापुरुष थे। किन्तु प्राचीनता के गम्भीर प्रेमी। भारतीय संस्कृति पर आपकी अटूट आस्था थी। साम, दान, दण्ड और भेद का प्रयोग आप सदा करते रहते थे। विद्यालय की रक्षा और उन्नति जगत के कल्याणार्थ आपके जीवन का ध्येय बन गई थी। जिले के मशहूर गुण्डों से लेकर कलेक्टर और छोटे-बड़े सभी नेताओं से आपका गहरा रब्त-जब्त था। विद्यालय का विरोधी आपके शब्दों में, कहीं शरण नहीं पा सकता था—'राखि का सकै राम कर द्रोही?'

जिस समय कालीपद ने शास्त्री जी को हेमचन्द्र की अनुशासनहीनता का समाचार दिया, उस समय आप शरीर मे मालिश करा रहे थे। जामे के बाहर हो गये और बोले—यह आदमी बड़ा कमीना निकला! मैंने इनकी इतनी सहायता की है। उसका फल ऐसा होगा, मैं न समझता था।

कालीपद—इधर यू. पी. के आदमी. ...

कालीपद ने सन्तुलन सम्हाला। शास्त्री जी ऐसी परिस्थितियों में न चूकते थे। बोले- उत्तरप्रदेश भारत की आत्मा है। राम, कृष्ण, वाल्मीकि, व्यास, कबीर और तुलसीदास को उत्पन्न करने वाला, गंगा और यमुना काशी और प्रयाग, अयोध्या और मथुरा, हरिद्वार और चित्रकूट का यह पावन प्रदेश भारतीय संस्कृति का प्रधान निर्माता है। आदमी सब जगह अच्छे-खराब दोनों प्रकार के होते हैं। ऐसा न कहना चाहिए, जैसा आप कह रहे थे। हॉ तो अब क्या होगा?

कालीपद - यही किया है मैंने कि उसे शाम को आपके पास बुलाया है। आप उसे थोड़ा डॉट-फटकार दीजिए, आ जायेगा राह पर। शायद आगे गलती न करे। मैं तो निगाह रखूँगा ही।

शास्त्रीजी- तुम ठीक कहते हो!

कुछ देर इधर-उधर की बातें हुई। नौकरों द्वारा खीचे जाने वाले पखो का प्रकरण चला। शास्त्री जी बोले—ऐसे पखे लगने से विद्यालय का नाम होगा और कुछ बचत भी होगी। आठ आने प्रति विद्यार्थी फीस ली जायेगी। खर्च आधा भी नहीं आएगा। जो व्यक्ति नौकर होंगे, उनके परिवार के वोट चुनाव में कहाँ जाते हैं?

कालीपद—आपका दिमाग आश्चर्यजनक....।

शास्त्री जी—यह सब तुम सीखते चलो। तुम्हारा भविष्य इस संस्था के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखता है। जल-पान की व्यवस्था भी की जाय, तो कैसा रहे? छह आने प्रति छात्र फीस ली जाये। चना आजकल बहुत अच्छे भाव पर है। सौ-दोसौ बोरे ले लिया जाये। मेरी समझ में काफी पैसा आएगा। ठीक है न?

कालीपद—जी, संस्था का नाम भी होगा।

शास्त्री जी—अबकी शिक्षा-मत्री को बुला रहा हूँ!

कालीपद—जानता हूँ। बड़ा अच्छा है।

इतने में ही क्लान्त और थका हेमचन्द्र आता दिखाई दिया। शास्त्री जी के इशारे से प्रिंसिपल मुखर्जी हट गए। शास्त्री जी गम्भीर मुद्रा में बैठ गए। हेमचन्द्र सूख गया। झुककर प्रमाण किया। शास्त्री जी का हृदय शीतल हुआ। सिर कुछ अधिक हिला दिया। आदेश दिया—बैठ जाओ!

हेमचन्द्र की जान में जान आई। बैठ गया। शास्त्री जी कुछ देर चुप रहे। फिर कहा–कहिए, विद्यालय का क्या हाल है?

हेमचन्द–अच्छा है!

शास्त्री जी– आजकल की शिक्षा का प्रधान दोष अनुशासनहीनता है। इस अनुशासनहीनता ने शिक्षा को मजाक बना दिया है। इसके लिए भावुक और पश्चिमी सभ्यता के दास अध्यापक भी उत्तरदायी हैं।

हेमचन्द्र–जी, समय ने अध्यापकों को अपने उच्च स्तर से च्युत कर दिया है। किन्तु परिस्थितियाँ भी तो अपना महत्त्व रखती हैं।

शास्त्री जी–परिस्थितियों की दुहाई देना कायरो का काम है। हमार पीछे भूत का विराट अनुभव-क्षेत्र पड़ा है, जिसे हम मुड़कर देख सकते है तथा उससे लाभ उठा सकते हैं। भविष्य का निर्माण हमें करना ही है। वर्तमान को अपने साथ लेकर चलना ही मनुष्यता है। वर्तमान का दास होना नहीं, स्वामी होना गौरव की वस्तु है। हमारा निर्माण परिस्थितियाँ करे, यह श्रेष्ठ नहीं। श्रेष्ठ तो है कि हम स्वयं परिस्थितियो का निर्माण करे।

हेमचन्द्र–अध्यापक आज गरीब और दुखी है, विशेषकर भारतवर्ष मे।

शास्त्री जी–अध्यापक को सुख से क्या प्रयोजन? अध्यापक को त्यागी और 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' का प्रतीक होना चाहिए!

हेमचन्द्र–किन्तु कुछ अध्यापक मजा करे, कुछ मरे, यह तो ठीक नही है। आजकल शिक्षा का व्यापार हो रहा है। हेमचन्द्र रुक गया। उसे प्रतीत हुआ, मानो वह अनुचित रूप से आगे बढ़ गया। शास्त्री जी के चेहरे पर मुस्कान के अतिरिक्त और कोई चिह्न न दिखाई दिया। बोले–इसका उत्तरदायित्व भी तो अध्यापकों पर ही है। वे स्वतः ईर्ष्या करते हैं कि इन्हे कम मिलता है, उन्हे अधिक, मुझे इतना। हमें अपने कर्तव्य का ध्यान रखना चाहिए। पैसा ही जीवन का सब कुछ नही है। अर्थ जीवन तथा धर्म का साधन मात्र है, साध्य नहीं!

हेमचन्द्र–बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव मनुष्य पर अनिवार्यः पड़ता है। हमें परिस्थितियों को भी अनुकूल बनाना चाहिए।

शास्त्री जी ऊब गए थे। अब मतलब पर आए। बोले–अच्छा। हाँ, आज विद्यालय में कुछ विद्यार्थियों को उभाड़ कर आपने नेतृत्त्व-कला का प्रदर्शन किया था? देखिए, नेतृत्व स्वार्थहीनता तथा अनुशासनशीलता में ही

सम्बद्धित होता है। आप लेट आए। प्रिंसिपल ने चेतावनी दी। आप, फिर भी, इण्टरवल्ल के बाद लेट ही रहे। इस पर आपसे नियमानुसार तथा विनम्रतापूर्वक यदि कुछ कहा गया तो नेतृत्व का प्रदर्शन कर बैठे। क्या यह ठीक है?

हेमचन्द्र जानता था कि जबर्दस्त मारता है और रोने नहीं देता। जानता था कि उसका कुछ कहना व्यर्थ है। रोजी पर लात मारना मूर्खता है। शास्त्री जी का विरोध साधारण नही। दबकर बोला--शास्त्री जी, आप पिता-तुल्य है। आपसे झूठ नहीं बोल सकता। मैने कभी किसी लड़के से कुछ नही कहा, उभारना और भड़काना तो दूर रहा। प्रिंसिपल साहब के शब्द कुछ कठोर थे। लडकों को बुरा लगा, मैंने कुछ नहीं कहा। आप जॉच कर सकते है।

शास्त्री–देखिए, मेरा गुप्तचर-विभाग सामान्य नहीं है। आपने प्रत्यक्ष भी कुछ कहा था और परोक्षतः भड़काने में सहायता की थी। देखिए, मैं बडा कठोर मनुष्य हॅू। राजनाथ एक अध्यापक थे। मुझसे विरोध किया। आज वह इस दुनिया में नहीं हैं। मेरा जो विरोध करता है, उसे मैं स्कूल से निकाल देता हूँ, इस पर भी न मानने पर जेल भिजवा देता हूँ, और इस पर भी न मानने पर हाथ-पैर तुडवा देता हॅू। वैसे मै गांधीवादी कॉंग्रेसी हॅू। किन्तु कर्तव्य को दर्शनों तथा वादो से भी ऊॅचा स्थान देना चाहिए।

हेमचन्द्र ने शास्त्री जी का आरक्तिम चेहरा देखा। पर उसे झूठा बताया गया था। डरने पर भी संकोचपूर्वक बोल ही तो पडा–मैं सत्य का समर्थक हॅू। मुझे जो झूठा बताता है, उसका विरोध मैं रक्त की आखिरी बूॅंद रहने तक कर सकता हूँ। नौकरी क्या, मुझे प्राण भी सत्य से अधिक प्रिय नही हैं।

शास्त्री जी--अरे, मैं आपको झूठा थोड़े ही बताता हूँ! मैं और जॉच करूँगा। खैर, जाइए, आपको अबकी बार माफ किया जाता है। आप योग्य तथा मेहनती अध्यापक हैं। कवि-सुलभ भावुकता तथा कच्ची उम्र के कारण कभी-कभी गलती कर बैठते हैं। किन्तु, मैं जानता हूँ कि आप भले हैं।

हेमचन्द्र को यह अपमान जहर की घूँट से भी अधिक कष्टप्रद लगा। किन्तु वह कुछ बोल न सका। शास्त्री जी ने अपनी सफलता की गहराई

समझ ली। बोले—अच्छा, अब आप जा सकते हैं। कभी-कभी मिल मिल कीजिए। मैं तो अध्यापको को नौकर नहीं, अपनी साथी समझता हूँ। फिर गरीबो की सेवा के लिए मैं अपना सारा जीवन ही दान कर चुका हूँ।

□□□

हेमचन्द्र जब शास्त्री जी से मिलकर चला, उसका शरीर भारी था। अपने अपमान के साथ ही उसे सुलोचना के व्यवहार का भी दुःख था। सुलोचना के कारण ही आज वह ठीक-ठीक काम न कर सका था, बातचीत न कर सका था। इस समय सिर में दर्द था। भूख मानो हवा हो गई थी। घर आकर सीधे चारपाई पर लेट गया। आज भोजन न बनाया था। मुन्नू को पैसे दे दिए थे। उसके आते ही मुन्नू अपने उल्लास को उंडेल बैठा—भैया, आज एक मोटर आई थी।

हेमचन्द्र—अच्छा, सो जाओ!

मुन्नू—काली-काली थी, भोंपा भी था।

हेमचन्द्र—ऐं?....सो जाओ!

मुन्नू का उत्साह ठण्डा पड़ गया। वह चारपाई पर लेट गया। हेमचन्द्र भी लेटा। पर नींद न थी। दूसरे विचार मानस में आने से डर रहे थे, सुलोचना की बातों की मीमांसा करना ही चिन्तन का विषय था। करवटे बदलता रहा।

मुन्नू मोटर-कार का विषय इतनी सरलता से छोड़ने को तैयार न था। कुछ देर रुककर बोला—भैया, मोटर में एक मेम साहब भी थीं। वह तुमको. .।

हेमचन्द्र—वह कैसी थीं? क्या नाम पूछा था?

मुन्नू—मेम की तरह थीं, लेकिन धोती पहने थीं। तुमको पूछ रही थी। जब मैंने कहा, नहीं हैं, तब चली गईं। भोंपा तक न बजवाया। बाबूलाल बाबा उनसे कुछ कह रहे थे।

हेमचन्द्र ने और बहुत-सी बातें पूछीं, जिनका उत्तर न मिला। घुमा-फिराकर मुन्नू कार की चर्चा छेड़ बैठता। अन्त में हेमचन्द्र ने उसे सोने के लिए कहा।

कुछ समय में ही वह सो गया। हेमचन्द्र को नींद न आ रही थी। उठकर प्रकाश किया। एक कविता लिखी। फिर लेटा। बाबूलाल उसके पिता से, और अब अकारण ही उससे, शत्रुता मानते थे। न जाने क्या कह दिया हो? कहीं सुलोचना गुस्सा तो नहीं हो गई? मैं कल अवश्य जाऊँगा। उसे मेरा इतना ध्यान कि यहाँ तक आई!—इन्ही भावों में डूबा, वह न जाने कब सो गया।

दूसरे दिन प्रात: समय पर ही विद्यालय पहुँच गया। प्रिंसिपल मुखर्जी के चेहरे पर आज उसे एक नई रौनक और रोशनी दिखाई दी। वह गर्व-भरी मुस्कान मे ही मानो कह रहे थे—"मेरे आदेश का जरा भी उल्लंघन इतना महत्त्वपूर्ण हो जाता है।" वास्तव में प्रिंसिपल मुखर्जी हेमचन्द्र से क्रुद्ध रहते थे। एक बार पोशाक के प्रश्न पर बड़ा वितण्डावाद उठ खड़ा हुआ था। प्रिंसिपल चाहते थे, सभी अध्यापकों की भाँति हेमचन्द्र भी विद्यालय की शान बढ़ाने के लिए अंग्रेजी लिबास में आया करें, जैसा कि सभ्यता का तकाजा है। हिन्दी भाषा का बारम्बार प्रयोग करना उन्हे फूटी आँखो भी न भाता था, और सभी अवसरो पर हाथ जोड़कर नमस्कार करना भी न रुचता था। यही कारण थे कि वे ऐसे अध्यापक को रखकर विद्यालय की शान नहीं घटाना चाहते थे। प्राय: स्वरूपनारायण शास्त्री से तर्क करते। किन्तु शास्त्रीजी जानते थे कि हेमचन्द्र अच्छा अध्यापक है, अच्छा पढ़ाता है, सीधा और सच्चरित्र है। अत: मुखर्जी को बहला दिया करते थे। हेमचन्द्र प्रिंसिपल साहब के असामयिक विद्रूपों को न समझ पाता हो, ऐसा नही था, पर लाचार चुप रहता।

किन्तु आज उसे मुखर्जी की तिरस्कारसूचक आकृति नितान्त असह्य प्रतीत हुई। स्वभावत: उसके चेहरे पर घृणा के भाव झलक गए। मुखर्जी ने ताड़ लिया। जल-भुन गए। वे इतना भी सहन करने को तैयार न थे। भावुकता में डूबते हुए बोले—जरा शीघ्र आने की कोशिश किया करो।

हेमचन्द को यह बहुत बुरा लगा। उसके मुख से भी निकल ही तो पड़ा—अभी तो लेट नहीं हूँ! मिस्टर बनर्जी और मिस्टर चक्रवर्ती आदि कोई भी नहीं आया!

कुछ विद्यार्थी भी वहाँ खड़े थे। मुखर्जी को सदा अपमान सहन कर लेने वाले हेमचन्द्र का सबके सामने तिरस्कार करके अपना रुतबा और

शोहरत बढ़ाने का आनंद आगे बढ़ने को विवश कर बैठा--आपसे मै उदाहरण नहीं लेना चाहता। मैं तो केवल आदेश दे रहा था। आप तो बेहद तुनुक-मिजाज हैं!

हेमचन्द्र जरा जोर से बोला--आदेश सभी पर समान रूप से लागू हाते हैं। मैं किसी का व्यक्तिगत क्रीतदास नही हूँ। जहाँ तक तुनुक-मिजाजी होने का प्रश्न है, वह मै आपसे सीख रहा हूँ। सहन करने की भी सीमा हाती है।

मुखर्जी--आप ऑफिस में चलिए।

हेमचन्द्र--चलिए।

विद्यार्थी प्रिंसिपल को लेकर हास्य करने लगे। मुखर्जी हेमचन्द्र को आफिस में ले जाकर बोले--आपको यहाँ काम करना है या नहीं?

हेमचन्द्र--इस प्रश्न का उत्तर मैं आपको देने के लिए बाध्य नहीं हूँ। और कोई काम हो तो बताइए, नही तो मैं जाता हूँ। मैं यहाँ पढ़ाने आता हूँ, तू-तू, मैं-मैं करने नहीं।

मुखर्जी--तुम जंगली आदमी...।

हेमचन्द्र-- जंगली आदमी अपने कृत्यों से स्वयं प्रकट हो जाता है। आप जैसे भी हों, प्रिंसिपल हैं। यह सब आपको शोभा नहीं देता। आप...।

मुखर्जी--रुक बे....।

हेमचन्द्र--सीमा के बाहर जाना बुरा होता है, मुखर्जी....।

मुखर्जी--चुप बदमाश, निकल जा यहाँ से . !

हेमचन्द्र-- आप गाली देते है, मै गाली न दूँगा। किन्तु एक थप्पड में ही आपकी सारी शेखी भूल जाएगी! मैं गाली नहीं सुन सकता!

मुखर्जी शांत हो गए। हेमचन्द्र भी कुछ अस्त-व्यस्त सा आफिस के बाहर निकला और काम में लग गया। उसे नौकरी जाने की शंका हो गई थी। फिर भी आज पहली बार प्रतीत हुआ, जैसे वह कुछ हल्का हो गया, कोई बोझिल चीज, कोई क्लान्ति उतर-सी गई है। पढ़ाने में मन न लगा। आज महीने की अन्तिम तारीख थी, आधे समय से ही विद्यालय बन्द हो गया। काम पूरा करके हेमचन्द्र घर चला। प्रिंसिपल ने क्रोध का कोई लक्षण न दिखाया, कोई आदेश न भेजा। हेमचन्द्र को लगा, प्रिंसिपल अपनी गलती समझ गया।

घर की ओर चलते ही सुलोचना का स्मरण हो आया। द्वंद्व में उलझे होने पर भी राजपुर की ओर चल दिया।

□□□

राजपुर लौटने के बाद सुलोचना के मस्तिष्क में बड़ा व्यतिक्रम रहा। बार-बार सोचती—क्या कवि भी इतना कठोर हो सकता है? बाबूलाल की बातें स्मरण आती रही। उसने भोजन न किया। सिर-दर्द का बहाना करके चुपचाप लेट गई। सर दिग्विजयनाथ ने खुद आकर पूछा—बेटी, क्या बात है? डॉक्टर ऐयर को बुलवाता हूँ।

सुलोचना ने मुस्कराते हुए कहा—पिताजी, बीमार कतई नहीं हूँ। भोजन करने की इच्छा नहीं है। दोपहर को अधिक खा गई थी, और कोई बात नहीं है। सर दिग्विजयनाथ को संतोष हुआ और वह जाकर काम में लग गये।

पलंग पर लेटे-लेटे सुलोचना हेमचन्द्र के विषय में न जाने क्या-क्या सोचती रही। सोचते-सोचते बहुत रात गए सो गई। सबेरे धूप निकलने तक सोती रही। सर दिग्विजयनाथ को कहीं बाहर जाना था। वह चले गये। सुलोचना उठकर कुछ टहलने के बाद नाश्ता करने बैठी। भूख काफी होने पर भी अधिक न खा सकी। नाश्ते के बाद जाकर लेट गई। पता न चला कि कितनी देर से लेटी है। सोचती थी—जो व्यक्ति आपत्ति में पड़े किसी अपरिचित प्राणी की सहायता सहृदयतापूर्वक अपनी हानि होने पर भी कर सकता है, वह अपने घर में आए किसी व्यक्ति को यह कहकर कि वह घर मे नहीं है, कैसे वापस कर सका? इसी समय नौकर ने आकर सूचना दी—'मेम साहब, एक बाबू आये हैं!'

सुलोचना—कौन है? क्या नाम बताया है? क्या....कहते-कहते वह रुक गई।

नौकर ने उत्तर दिया—हेमचन्द्र नाम....

सुलोचना—उन्हे इधर भेज दो। तुम जाओ।

वह उठकर बैठ गयी। चेहरा खिल उठा। मन मे प्रतिकार की एक अज्ञात तरंग भी उठी, किन्तु दबा दी गयी! फिर भी, रूठने का नाटक खेलने

की इच्छा बलवती ही रही! रूठ जाना नारी का सबसे मनोरम व्यापार है, रूठने का उद्‌गम भी प्रेम है, विकास भी प्रेम है, अन्त भी प्रेम है। रूठना प्रेम का सर्वाधिक रमणीय रूप है। हेमचन्द्र आते ही नमस्कार करते हुए बोला—क्षमा कीजिएगा, कल शाम को आपने बड़ा कष्ट...।

सुलोचन-- कष्ट मुझे क्या होगा? मुझे तो ज्ञात है कि कलाकारों के दर्शन बड़ी साधना के बाद ही होते हैं।

हेमचन्द्र—आप तो मेरा मजाक उड़ा रही हैं, कला की प्रेरणा तो कलाकार से भी अधिक महत्त्व की वस्तु है! वह चुप हो गया, आँखें नीचे कर ली।

सुलोचना लाल हो गई, बोली—तो कल कहाँ .?

हेमचन्द्र—विद्यालय के मंत्री या स्वामी, जो भी समझिए, श्री स्वरूपनारायण शास्त्री के आदेशानुसार उनकी सेवा में गया था।

सुलोचना ने मुस्कराते हुए जमीन की ओर से आँखें हटाकर हेमचन्द्र की ओर देखते हुए कहा--क्या आप सच कह रहे हैं?

हेमचन्द्र कुछ परेशान-सा बोला--क्या आप मुझसे झूठ की आशा रखती है?

एक ही वाक्य ने सुलोचना के हृदय को बहला दिया! उसकी आँखों में आँसू की एक-एक बूँद आकर जमीन पर चू पडी।

हेमचन्द्र न देख सका, उसने दुहराया--क्या आप मुझसे झूठ की आशा रखती हैं?

सुलोचना-नही! मुझसे एक वयोवृद्ध सज्जन कह रहे थे कि आप घर पर ही बने रहते हैं और कहते हैं ..!

हेमचन्द्र—और आपने उनकी बात मान ली? मैं कोई राजा-रईस थोडे ही हूँ जो दरबान ही मुझ तक किसी को न पहुँचने दे!

सुलाचना—आप दोनों प्रकार से जीते, मै हारी! अब तो व्यंग्य करना छोड दीजिए! आप.. .!

हेमचन्द्र—आपकी हार का आनन्द मैं ले न सकूँगा क्योंकि आपकी हार भी मेरे लिए जीत है!

इसके बाद हेमचन्द्र को बहुत देर रुकना पड़ा। भोजन करके घंटों बातें कीं। सुलोचना ने कहा—आप आज यही रुक जाइए।

हेमचन्द्र—नहीं, घर तो जाना ही है! एक लड़का है, उसके भोजन का

प्रबध करूगा।

सुलोचना—नौकर है क्या? वही तो नहीं है, जो हॉर्न बजाने की बात बार-बार कह रहा था! ओह, आप क्या जानें?

हेमचन्द्र—नौकर तो नहीं है, भाई है, वही है, जिसकी आप चर्चा कर रही हैं!

सुलोचना—आपका भाई है?

हेमचन्द्र—सहोदर न सही! अनाथ-सा था, मैंने अपने पास रख लिया। अब तो भाई ही है न?

सुलोचना ने श्रद्धामय नेत्रों से सरल हेमचन्द्र की ओर देखा और चुप रही। इसके बाद निश्चय हुआ कि हेमचन्द्र रोज सायंकाल पाँच बजे आकर कुछ समय सुलोचना को पढा जाया करेगा। सुलोचना ने फीस की बात कही। हेमचन्द्र बोला—आपसे मैं कुछ शुल्क न ले सकूँगा। मैं किसी से भी कोई शुल्क नहीं लेता। फिर यहाँ तो मेरा लाभ भी होगा। सहपठन है यह, अध्यापन नहीं!...पिताजी ने कह दिया है?

सुलोचना—जी, उन्होंने कह दिया है। कल शाम आपकी प्रतीक्षा करते रहे, किन्तु आप न आए। आज तो वह कार्यवश बाहर गये हैं, यहाँ कम रहते हैं। दो-सौ रुपये मासिक तो आपको लेने ही होंगे!

हेमचन्द्र इस लम्बे शुल्क को सुनकर कुछ विचित्र स्थिति में पड़ गया। कुछ देर चुप रहने के बाद बोला—देखिये, सुलोचनादेवी, शुल्क का आग्रह न कीजिये!

सुलोचना न जाने क्यों कुछ बोल न सकी। कुछ रुककर बोली—जो आज्ञा!

हेमचन्द्र का मुख उल्लास से खिल उठा। उसका हृदय अनुराग और आदर की भावना से भर गया।

□□□

प्रिंसिपल कालीपद मुखर्जी उन व्यक्तियों में थे, जो प्रतीक्षा करके समर देखते हैं। उस दिन हेमचन्द्र ने जो गुस्ताखी की थी, उसे वह भूले न थे। हाँ

अपनी थोड़ी भूल के कारण सारी घटना को जब्त कर बैठे थे। कॉलेज में ही एक और अध्यापक थे। वह कविता के क्षेत्र में बहुत प्रसिद्धि पा चुके थे। अवस्था तीस वर्ष के करीब थी। रेडियो और कवि-सम्मेलनों में उपस्थित जन-मण्डली के अनुकूल समय को देखकर ऐसे गीत छेड़ते कि वाहवाही मच जाती। बड़े-बड़े छायावादी केश, लाल डोरों वाली सुरमे के चिह्नों से युक्त मतवाली आँखें और भावुक चेहरा आदि भी उनकी शोभा बढ़ाते थे। उपनाम था पंकज। आजकल पंकजजी से कालीपद की बहुत पटने लगी थी। पंकजजी एम. ए. में तृतीय श्रेणी से उत्तीर्ण हुए थे, नहीं तो कुछ और होते। वे कांग्रेस के नेता भी थे। शास्त्री जी को अपना गुरुदेव मानते थे।

पंकजजी प्रिंसिपल मुखर्जी से शुरू से ही अधिक रब्त-जब्त रखते थे। बंगाली साहित्य के वे घोर प्रशंसक थे। रवीन्द्रनाथ को विश्व-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे। बंगला तो न जानते थे, पर अनुवादों के सहारे वह बंगला साहित्य में प्रवेश कर चुके थे। प्रिंसिपल मुखर्जी भी अंग्रेजी के अतिरिक्त और कोई साहित्य अधिक न जानते थे। फिर भी बंगला-साहित्य का इतिहास की अंग्रेजी प्रति ने आपको मातृ-साहित्य का ज्ञान करा दिया था। इसलिए दोनों सज्जनों की वार्ता बहुत दिलचस्प होती थी।

शाम का समय था। शास्त्रीजी के बंगले के पार्क में कुर्सियाँ पड़ी थीं। पंकजजी और मुखर्जी बैठे थे। मुखर्जी कह रहे थे—हिन्दी में न कोई टैगोर है, न शरत। तुलसीदास के अतिरिक्त और कोई ऐसा व्यक्ति नहीं, जिसको विश्व-साहित्य में स्थान मिल सके। तुलसी की प्रशंसा तो सर जार्ज ग्रियर्सन और प्रो. वारान्निकोव तक ने की है। मैंने भी ग्राउस का ट्रान्सलेशन पढ़ा था। अच्छा.....।

पंकजजी कुछ कहने जा रहे थे कि शास्त्री जी आ गये। रेशमी धोती पहने थे। ऊपर एक रेशमी चद्दर पड़ी थी। पैर में खड़ाऊँ थे। उन्हें देख दोनों व्यक्ति उठकर खड़े हो गए। शास्त्री जी को प्रमाण किया। कालीपद हाथ जोड़कर झुक गये। पंकजजी के तो गुरुदेव ही सामने खड़े थे। शास्त्रीजी हाथ उठाकर सिर हिलाते हुए बैठ गए। कहा—बैठ जाइये।

दोनों सज्जन बैठ गये, मुखर्जी ने प्रारम्भ किया—कुछ कॉपियाँ आपको दिखानी......।

शास्त्री क्यो?

मुखर्जी–श्री हेमचन्द्र इतनी लापरवाही से जाँचते हैं कि क्या बताऊँ। पाच-छह संरक्षक शिकायते ला चुके है। विद्यालय की बदनामी होती है। हमें विद्यालय को एक दिन विश्वविद्यालय बनाना है, यदि लापरवाह रहेंगे, तो....

शास्त्री जी–कभी चेतावनी दी है..

मुखर्जी–मैंने कई बार चेतावनी दी है, लेकिन कोई प्रभाव नही पडा। उल्ट लड्कों को भडकाते हैं–पंखा फीस अधिक है, नाश्ता-फीस बहुत है... !

शास्त्रीजी--एँ? मैं पढ़ाई की शिकायत के विषय में एकाध बार चेतावनी देकर छोड़ भी सकता हूँ, किन्तु मैनेजमेट में हस्तक्षेप करने वाला व्यक्ति मेरी सस्था में नहीं रह सकता। मैं इस व्यक्ति को निकाल दूँगा. ।

मुखर्जी–अरे, निकालिएगा क्या, चेतावनी देकर.....।

शास्त्री जी–यह व्यक्ति गुण्डा है, नेता बनने की फिराक म है, मै न रखूँगा।

पकजजी–योग्य तो है, लेकिन घमण्ड...।

शास्त्री जी–ऐसी योग्यता व्यर्थ है, जो अनुशासन को न माने। कर्तव्य को जीवन में सर्वोपरि समझना ही सच्ची मानवता है।

पंकजजी–यह तो ठीक ही है।

मुखर्जी–फिर भी निकालिएगा नहीं...।

शास्त्री जी–आप इस विषय मे मुझसे कम जानते हैं। उसे मेरे पास भेज.. !

मुखर्जी–आज ही आता होगा। मैं कह आया था। एक बार विचार.।

शास्त्रीजी–सब विचार लिया, क्या आप मेग विरोध करना चाहते हैं?

मुखर्जी–अरे राम, क्षमा कीजिए, मैं तो यों ही कह रहा था। कर्तव्य की ओर ध्यान न देने पर तो निकालना ही मैं भी श्रेयस्कर समझता हूँ। किन्तु गरीब.....!

शास्त्रीजी–कर्तव्य सर्वोपरि है, बस अब इस विषय को समाप्त कीजिए। कौन प्रोफेसर नया रक्खा जाएगा? हेमचन्द्र की जगह पंकजजी को दे दी जायेगी। क्यों, पंकज....!

पंकजजी ने सिर नीचा करके उत्तर दिया—मुझ भावुक का इस झंझट में फँसना ठीक न हो....।

मुखर्जी—आप इतने अच्छे अध्यापक हैं, विद्वान हैं, कवि हैं, फिर भी ऐसा कहते है! यही तो पलायनवाद है।

शास्त्री जी—अच्छा, तो ठीक रहा। हाँ, नया व्यक्ति....।

मुखर्जी—एक व्यक्ति है, पास तो थर्ड डिवीजन में ही है, किन्तु योग्य है, क्या उसे रख....।

शास्त्री जी—क्या नाम है? कहाँ रहता है?

मुखर्जी—बी. के भट्टाचार्य। साहित्यरत्न के क्लासेज भी लगने लगेंगे। उसके आने से। बंगला पढ़ाने में अद्वितीय है और अंग्रेजी पढ़ाने में भी लासानी।

शास्त्रीजी—लेकिन बंगाली है। विद्यालय में बंगाली बहुत हैं।

मुखर्जी—यह प्रान्तीयता आप में कैसी? आप तो राष्ट्रीय नेताओं मे हैं। फिर भी ऐसा कहते हैं। आप ही ऐसा करेंगे तो....।

शास्त्री जी—हम नेताओं के दो रूप होते हैं। एक तो नीति-सम्बन्धी (थ्योरी का) रूप, जो भाषणों और प्रस्तावों में रहता है, और दूसरा कार्य-करण-सम्बन्धी (प्रैक्टिस का) रूप, जो कार्यो में रहता है। जनता की शिकायत है कि बंगाली अध्यापक विद्यालय में अधिक हैं। मैं तो जनता का लाउडस्पीकर-मात्र हूँ। अच्छा होगा, यदि कोई दूसरा व्यक्ति रखा जाय। फिर भट्टाचार्य को आप थर्ड डिवीजन पास बताते हैं।

पंकजजी—होगा, कोई बात नहीं।

मुखर्जी—जी।

शास्त्री जी—हाँ, फीस-कशेसन से सम्बन्धित जो दूसरे रजिस्टर बने थे, वे पूरे भर गये हैं न? फीस तो कुल पैंतीस लड़कों की माफ और उनचास की आधी की गई है?

मुखर्जी—जी। आपने जिनकी सिफारिश की, उन्हीं की माफ या आधी माफ हुई है। इतने ही हैं।

शास्त्री जी—अपने राम तो फीस की पूरी माफी या आधी म।फी की सिफारिश बहुत सोच-विचारकर करते हैं। चन्दा देने वालों, ट्रस्ट के सदस्यों, बड़े-बड़े अधिकारियों, नेताओं आदि के पुत्रों तथा उनके सम्बन्धियो के पुत्रों की फीस में पूरा या आधा कंशेसन न जाने क्या-क्या काम

बनवाता है. सबकी चिट्ठियाँ पास रखता हूँ, मौके पर काम आती हे फटेहालों के बेटों और नातेदारों की फीस माफ करके क्या मैं कुछ भी काम बना सकता हूँ?

पंकज जी--सच है! यही तो दूर-दृष्टि है, विवेक है!

मुखर्जी--बेशक।

शास्त्री जी--और रजिस्टरों में ढाई-सौ की माफ और चार-सौ की आधी दिखाई गई है न? देखिये, काम सफाई से हो। जाँच करने कौन आता है? मैं सब ठीक किये हूँ। लेकिन मसा भी न भन्नाने पाये। बद अच्छा बदनाम बुरा। देखिये, एक-बटा दस आपको और बीस-बीस रुपये प्रति सम्बद्ध अध्यापक को मिलेगा। ठीक है न?

मुखर्जी--आप सदा हमारा ध्यान रखते हैं।

पंकज जी--शास्त्री जी धन्य हैं!

शास्त्री--अच्छा, अब हेमचन्द्र आ रहा होगा। उसे तो रजिस्टर सम्बन्धी..।

मुखर्जी--यहाँ कच्ची गोटी नहीं खेलते। फिर भी, उसे कुछ सूराग मिल गया है। कहता था, शिक्षा के पावन क्षेत्र में भ्रष्टाचार न होना चाहिए।

शास्त्री जी की आँखें लाल हो गईं। दाँत पीसकर बोले--कुत्ता कहीं का। मुझे कर्तव्य सिखाता है। आप जाइये। आज ही निकाल दूँगा इस नालायक को।

मुखर्जी ने उठते हुए कहा--अरे, सोच-विचार.....!

शास्त्री जी--इस विषय में मैं किसी की न सुनूँगा।

पंकजजी भी उठे। शास्त्री ने कहा--सुनो पंकजजी, तुम न जाओ। तुमसे कुछ बातें करनी है।

पकजजी रुक गए। मुखर्जी चले गए। उनके जाते ही शास्त्री जी बोले--कहो, विद्यालय का क्या हाल है?

पकजजी--सब ठीक है। हॉ, विद्यार्थियों में हेमचन्द्र के कारण कुछ विरोध की भावनाएं पनप रही हैं। किन्तु अभी कोई खास बात नहीं है। देखिए, विद्वान होने पर भी....।

शास्त्रीजी--नीच है! उसको तो अब निकाल ही रहा हूँ। यह मुखर्जी न जाने कहाँ से बगलियों को बटोर-बटोर कर विद्यालय में रखने को मतवाला सा बना रहता है। सब दलबन्दी के रँग हैं। मैं तो कोई ब्राह्मण अपने यू पी

का रखूँगा। ठीक है न?

पंकजजी–यह तो मैं आपसे स्वयं कहने वाला था। दूसरे प्रान्त वाले यही करते हैं। किन्तु आप जैसे चतुर राजनीतिज्ञों का मुखर्जी जैसे किताबी कीड़े क्या कर सकते हैं?

शास्त्रीजी अट्टहास करते हुए बोले–सुनो, अबकी गवर्नर साहब को बुला रहा हूँ। वही वार्षिक पुरस्कार-वितरण करेंगे। उनके स्वागत के लिए एक कविता लिख दो, पढूँगा मैं।

पंकजजी कुछ रुककर बोले–जी।

शास्त्रीजी–आपकी 'चयनिका' का प्रकाशन मैं एक प्रकाशक महोदय द्वारा शीघ्र ही करवा रहा हूँ।

पंकजजी–आपकी मुझ पर बड़ी कृपा है। गवर्नर साहब कब आ रहे है? कब तक प्रकाशित हो जायेगी 'चयनिका'?

शास्त्रीजी–एक महीने के अन्दर। कल तुम उसे यहाँ ले आना। प्रकाशक महोदय यहीं आये है, कुछ मिल भी जायेगा। प्रकाशक मेरे साले होते हैं। बहुत जोर देने पर माने। विद्यालय का नाम भी तो होगा! गवर्नर साहब का कार्यक्रम अभी निश्चित नहीं हुआ। स्वीकृति अवश्य मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं।

पंकजजी–वाह शास्त्रीजी, धन्य हैं! गीत कितना....।

शास्त्रीजी–कोई डेढ़-सौ पंक्तियाँ हों, भाषा सरल और भड़कीली। उपमाओं का ध्यान रखना, मुझे तो शिवाजी के लिए दी गयी भूषण कवि की उपमाएँ बहुत प्रसन्न आती हैं। वैसी ही! कहीं लिखते समय प्रगति-भक्ति के चक्कर में न पड़ जाना। वैसे, मैं भी प्रगति-भक्त हूँ। किन्तु प्रगति-भक्ति पर भी समय को देखकर ही ध्यान देना चाहिए। देखो! हेमचन्द्र आ रहा है।

पंकजजी ने मुड़कर देखा, हेमचन्द्र आ गया था। उसने शास्त्रीजी को प्रमाण किया। पंकजजी ने आज भी उसको समादृत किया। बैठते हुए शास्त्रीजी से बोला–कहिए, क्या आज्ञा है?

शास्त्रीजी–सुनता हूँ, आजकल आपको नेता बनने का मर्ज हो गया है। नेतृत्व त्याग तथा बलिदान करने से उपलब्ध होता है, केवल विद्वत्ता या देशभक्ति से नहीं।

हेमचन्द्र–मुझे तो ऐसा कोई मर्ज नहीं है, इस मर्ज के रोगियों की

स्थिति देखकर मैं स्वयं परेशान हूँ।

शास्त्रीजी तिलमिला उठे। कुछ जोर से बोले—छोड़िए, इस समय मैंने आपको इसलिए बुलाया है कि आप आज ही त्यागपत्र लिखकर मुझे दे दें। आपकी जाँची कॉपियों में अशुद्धियाँ रह जाती है। इसके अतिरिक्त आप मैनेजमेंट के कार्यो में अनुचित हस्तक्षेप करते हैं। आदर्शवाद अतीत का एक सुरम्य काल्पनिक सिद्धान्त भले ही रहा हो, आधुनिक प्रत्यक्षवाद के कर्म-युग में वह अकर्मण्यो तथा मूर्खों के वाग्विलास की सामग्री मात्र रह गया है।

हेमचन्द्र—मुझ ऐसी नौकरी छोडने मे हर्ष ही है, जिसमें भ्रष्टाचार और बेईमानी को सहन कर लेने पर भी राहत नहीं मिलती, बल्कि उनकी प्रशसा करना भी आवश्यक होता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की भॉति शिक्षा में भी व्यापार-सुलभ भ्रष्टाचार प्रवेश कर चुका है। इसे केवल शासन ही दूर कर सकता है। आज. ..।

शास्त्रीजी—आप युग को बदलने वाले मसीहा बनते हैं।

हेमचन्द्र—मैं तो ऐसा कभी स्वप्न मे भी नहीं सोचता। आप ही एक कॉग्रेसमैन, नहीं, कॉग्रेस लीडर, होकर भी ऐसी बातें करते हैं, जो सिद्धान्तो की दृष्टि से बहुत ही हल्की हैं। मैंने कभी मैनेजमेंट मे हस्तक्षेप नही किया। ढग को देखते हुए, आत्मा को दबाकर, मैं सब कुछ देखता रहा। रहा, मेरी जॉची हुई कॉपियों में रह जाने वाली अशुद्धियों का सवाल, सो क्या अपने ऐसी कोई अशुद्धि दखी? प्रिंसिपल मुखर्जी बँगला तो जानते नहीं, हिन्दी की अशुद्धियॉ कब से निकालने लगे? खैर, होगा, आपकी आज्ञा है तो लिखना हॅू। रहा आदर्शवाद, वह मुझसे कोई छुड़ा नहीं सकता। मैं केवल भाषणों का आदर्शवादी नही हूँ, कार्यों का भी आदर्शवादी हॅू!

पंकजजी—जीवन एक विकासशील वस्तु है। उसके स्वरूप में सतत परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक सिद्धान्त या वाद समय की सीमाओ में आबद्ध होते हैं। निस्सीम जीवन को ससीम वाद या सिद्धान्त की दीवारों मे डाल देने में बुद्धि तथा भावनाएं संकुचित हो जाती हैं। जीवन का पूर्ण विकास नहीं हो पाता।

हेमचन्द्र—कर्तव्य का पालन वादो या सिद्धान्तों से बढ़कर है। कर्तव्यवाद ससीम नही, निस्सीम है। वह शाश्वत होता है। यदि कर्तव्यवाद भी वाद माना

जाता है, तो उसका मानना आवश्यक है। वाद एक निश्चित दर्शन प्रदान करते हैं, एक नियमित जीवन-मार्ग तथा कर्म-मार्ग बताते हैं। अतः जीवन में उनकी उपयोगिता स्पष्ट है। हाँ, हम वाद को अपने साथ लेकर चलें, कहीं वाद हमें अपने साथ लेकर न चलने लगे, इसका ध्यान रखना बहुत ही आवश्यकता है। वाद साधन है, साध्य नहीं, साध्य मानव ही है।

शास्त्रीजी–मेरे पास व्यर्थ के तर्क-वितर्क और वाग्विलास के लिए समय नहीं है।

हेमचन्द्र–जी, वेतन अभी दो महीनों का शेष....।

शास्त्रीजी–प्रिंसिपल से मिलेगा। यहाँ उसके लिए कष्ट करने की आवश्यकता न होगी। देखिये, विद्यालय के बाहर कोई षड्यंत्र न हो, न कोई प्रचार ही हो नहीं तो मैं सभी प्रकार के शास्त्रों का प्रयोग कर बैठता हूँ।

हेमचन्द्र–मुझे आपका कोई भय नहीं है। मेरे परिवार भी नहीं, जो जीवन को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दूँ। लेकिन जिस संस्था में मैं रहता हूँ, उसकी झूठी निन्दा करने की मेरी प्रवृत्ति नहीं है। वैसे, बन्दर-घुड़की से मैं डरता भी नहीं हूँ।

शास्त्रीजी का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। हेमचन्द्र ने त्यागपत्र उनके सामने रखा और प्रणाम करके चल दिया। शास्त्रीजी उसके जाते ही कुछ जोर से बोले–"बेटा के हाथ-पैर न तुड़वा दिये तो स्वरूपनारायण नाम नहीं।" हेमचन्द्र यह वाक्य सुन नहीं पाया।

पंकजजी–बड़ा अशिष्ट व्यक्ति निकला।

शास्त्रीजी–होगा, मैं तो निश्चित कर चुका। पङ्कजजी, गीत का ध्यान रखिएगा।

वह उठने लगे। पकजजी ने गीत हफ्ते भर में ही देने का वायदा किया और अभिवादन करके चले गये।

दूसरे दिन प्रातः समय पर ही हेमचन्द्र विद्यालय पहुँचा। प्रिंसिपल मुखर्जी बड़े तपाक से मिले। बोले–कहिए, कैसे कष्ट किया?

हेमचन्द्र–शास्त्रीजी ने मुझ से कल त्याग-पत्र ले लिया है। आपको तो सब विदित होगा? वेतन लेने आया हूँ।

मुखर्जी–निकाले हुए अध्यापकों का वेतन तो शास्त्री जी के यहाँ से ही मिलता है।

हेमचन्द्र--उन्होने आपसे लेने को कहा है। वहाँ वेतन के बारे मे न आने की बात कही थी। पंकजजी के सामने की बात है।

मुखर्जी--समझ गया। वह वेतन अदालत के अतिरिक्त और कहीं देना नही चाहते। परन्तु अदालत मे आप भूलकर भी न जाइएगा, नहीं तो खर्च के मारे नाक में दम हो जाएगा, वर्षो बाद कही डिग्री होगी, परेशान हो जाइएगा। थोड़ा सन्तोष कीजिए। मानता हूँ, आपके पास पैसा नहीं है। कल ही आप एडवान्स के रूप मे कुछ लेने को तैयार थे। फिर भी, सन्तोष कीजिए। बड़ों का विरोध करना ठीक नहीं होता।

मुखर्जी मुस्कराते हुए चले गये, विद्यार्थियों ने हेमचन्द्र को घेर लिया। अन्ततोगत्वा हेमचन्द्र को सारा हाल बताना पड़ा। विद्यार्थी उत्तेजित हो उठे। हेमचन्द्र डरा, कही मामला बढ़ न जाए जो शास्त्रीजी को मुझे गिरफ्तार कराने में सुगमता हो, और मेरे न रहने पर उसका मार्ग पूर्णत: प्रशस्त हो जाये। अतएव वह वहाँ से चल गया। इधर विद्यार्थियो का कोप बढ़ा। उस दिन विद्यालय मे हड़ताल-सी रही। बहुत थोड़े छात्र ठीक से विद्यालय में बैठे। शेष सभी अपने-अपने घर चले गये। ब्रजेन्द्रशंकर ने हड़ताल बढ़ाने का निश्चय किया।

□□□

हेमचन्द्र नित्य सायंकाल सुलोचना की कोठी पर जाता। सर दिग्विजयनाथ से उसका परिचय हो गया। मिलनसार व्यक्ति थे। हेमचन्द्र को चाहने लगे। सुलोचना का अध्ययन भी चलता रहा। हेमचन्द्र शाम को जब तक वहाँ न जाता, खोया-खोया रहता। और सुलोचना को तो नित्य ही वह प्रतीक्षा करते हुए पाता।

त्यागपत्र देने वाला दिन हेमचन्द्र का सुलोचना के यहाँ अनुपस्थिति का रहा। हेमचन्द्र ने त्यागपत्र तो दे दिया, क्या करता, कोई चारा ही न था, किन्तु उसे रोजी की चिंता लग गई। इसलिए, सुलोचना के यहाँ न जा सका। दूसरे दिन वेतन न मिलने पर उसे और चिन्ता हुई। उसके सामने भोजन की समस्या थी। इस समय वह विचित्र स्थिति में था। दावा करने, रोजी की

चिन्ता तथा भविष्य के कार्यक्रम की रूपरेखा बनाने से ही उसे अवकाश न मिल पाया। मुन्नू को उसके एक दूर के रिश्तेदार लिवा ले गये। घर पर हेमचन्द्र अकेला ही था। एकान्त शोक की वृद्धि में सहायक होता है।

सुलोचना हेमचन्द्र के न आने पर चिन्तित हुई। उसे हेमचन्द्र के रुग्ण होने की आशंका हो गई। पहले दिन किसी तरह आशा लगाये बैठी रही, किन्तु दूसरे दिन व्यग्रता बढ़ गई। सायं छह बजे तक हेमचन्द न आया, तो वह स्वयं कार लेकर मनोहरपुर की ओर चल पड़ी। घर के सामने उतरकर वह सीधे अन्दर घुसने को ही थी कि बाबूलाल ने प्रणाम किया। उसने उत्तर तो दे दिया, किन्तु बाबूलाल की ओर देखा नहीं। हेमचन्द्र के घर का दरवाजा खुला था। अन्दर घुस गई। देखा, हेमचन्द्र हतचेत-सा आँखें मूँदे पड़ा है। सुलोचना कुछ देर खडी-खड़ी चुपचाप उसे देखती रही। उसने हेमचन्द्र के प्रशांत मुख को शोक और चिता की अप्रत्याशित रेखाओं से घिरा पाया।

एकाएक हेमचन्द्र ने आँखें खोल दीं। सामने सुलोचना को खडा पाकर उठ बैठा। बोला-आप? कैसे? कब?.....

सुलोचना-आप शायद रूठ गये हैं? मनाने आई हूँ।

हेमचन्द्र के चेहरे पर एक उल्लसित स्मिति-सी खेल गई। उसके मुख से निकल पड़ा-मनाने के लिए तो सुष्टि की मधुमयी विभूति सुन्दरी बनी है, किन्तु....वह चौंककर रुक गया।

यद्यपि सुलोचना का मुख कुछ लाल हो गया, आँखें कुछ नीची हो गई, किन्तु वह बोल पडी-यह मुझे आज ही मालूम हुआ कि मैं सृष्टि की मधुमयी विभूति सुन्दरी हूँ।

हेमचन्द्र-क्षमा कीजियेगा, आपको कष्ट करना पड़ा। मैं कारणवश ।

सुलोचना-क्षमा तो मैं कर चुकी। यह तो बताइए कि कारण क्या था? आपके पास भावुक हृदय है, कोमल हृदय नहीं। पुरुष मे भावुकता अधिक होती है, कोमलता कम। नारी में कोमलता अधिक होती है, भावुकता अपेक्षाकृत कम।

हेमचन्द्र-मैं तो नारी को अधिक भावुक समझता था। बैठ तो जाइए।

बैठते हुए सुलोचना बोली-यह धारणा यद्यपि सर्वग्राह्य-सी बन गई है कि नारी में भावुकता की मात्रा पुरुष से अधिक होती है, किन्तु वास्तव में

भावुकता उसमे पुरुष से कम होती है। उसमें कोमलता अधिक होती है। कोमलता भावुकता की जननी है। यही कारण है कि स्त्रियो मे कोई कालिदास, शेक्सपीयर या गेटे नही हुआ। किन्तु कालिदास, शेक्सपीयर या गेटे की भावुकता की स्रोतस्विनी का मूल उद्‌गम नारी मे ही स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। नारी की व्रीडा उसकी भावुकता के प्रवाह को रोके रहती है, और यह तो स्पष्ट ही है कि व्रीड़ा नारी की विशेष विभूति है।

हेमचन्द्र पलंग से उठकर अन्दर जाने लगा। सुलोचना ने कहा—रुकिए, अतिथि-सत्कार की विशेष आवश्यकता नहीं।

हेमचन्द्र- विशेष नहीं होगी, वैसे है तो अवश्य। किसी समय राम शबरी के यहाँ गए थे तो वहाँ बेर तो खाने ही पड़े।

सुलोचना-यदि न खाऊँ तो?

हेमचन्द्र—यह हास है, सत्य नही। भगवान कभी सच्चे भक्तों की भेंट अस्वीकार नहीं करते। भगवान ही भक्त के यहाँ जाकर उसका शाक-पात खाते हैं।

हेमचन्द्र की आँखो में आँसू आ गए। वह कुछ और न कह सका। सुलोचना ने यह स्थिति देख ली। उसने नेत्रों मे भी बूँदें दिखाई पड़ी। धैर्यपूर्वक बोली-भक्त तो मै..।

हेमचन्द्र घर के अन्दर चला गया। थोड़ी देर बाद वह रकाबी में कुछ खाने को और गिलास में पानी लिये आया और सुलोचना के सामने रखकर खड़ा हो गया।

सुलोचना ने कहा—आप भी बैठिए और खाइए!

हेमचन्द्र--नहीं।

सुलोचना—मैं ब्राह्मण ही ..।

हेमचन्द्र—मुझे रुलाने में भला तुम्हें क्या मिलेगा?

सुलोचना—मोती! भावो के मोती! आँसू भावों के मोती होते हैं। जो रोना नहीं जानता, वह जीना नहीं जानता।

हेमचन्द्र—लो, मैं हार गया।

सुलोचना—और मैं हारकर भी जीत गई।

दोनों बैठकर जलपान करने लगे। सुलोचना ने पूछा—आप कल और आज क्यों नहीं आए? क्या तबीयत खराब थी? यदि खराब थी, तो खबर

भेज देते।। मैं डॉक्टर ऐयर को भिजवा देती।

हेमचन्द्र–जिस अभागे देश में लाखों आदमी क्षय, कुष्ठ, मलेरिया, चेचक, हैजा और प्लेग से प्रतिवर्ष चिकित्सा के अभाव में मर जाते हैं, उस अभागे देश का हेमचन्द्र डॉक्टर ऐयर का इलाज कैसे करा सकता है?

सुलोचना हतप्रभ हो गई। रोते हुए हेमचन्द्र ने कहा–सुलोचना, अपना राम और कृष्ण, व्यास और वाल्मीकि, बुद्ध और शंकराचार्य, कालिदास और तुलसीदास, गंगा और यमुना, नर्मदा और गोदावरी, कृष्णा और कावेरी हिमालय और विन्ध्याचल का यह पवित्र देश बहुत दुखी और गरीब है। हम अपना चरित्र, अपनी विभूति, अपनी परम्परा तथा आत्मतः अपना विवेक प्रायः सभी खो चुके हैं।

सुलोचना–आपको कहीं कोई प्रतिक्रियावादी न कह द।

हेमचन्द्र–आज के वाद प्रतिक्रिया के पुत्र हैं। उनमें सहजक्रिया की प्रसन्न गम्भीरता तथा अभिनिवेश-मुक्त मौलिकता नहीं है। आधुनिक दर्शन और विभिन्न शास्त्रीय वाद गम्भीरतम मनन तथा विश्वव्यापकत्व की भावना के अभाव के कारण निर्माण की अपेक्षा ध्वंस को ही अधिक प्रश्रय दे रहे हैं। माना, ध्वंस निर्माण का प्रतीक भी हो सकता है। परन्तु ध्वंस साधन है, साध्य नहीं। खेद है कि आज ध्वंस साध्य बनता चला जा रहा है। पश्चिम के अधिकाश दर्शन एकांगी हैं। वे एक सीमा में आबद्ध हैं। एक ओर हॉब्स, बोडिन आदि हैं, तो दूसरी ओर लॉक और रूसो आदि। एक ओर स्पेंसर, मिल आदि है, तो दूसरी ओर मार्क्स और लेनिन आदि। पाश्चात्य चिन्तक प्रतिक्रिया के आक्रोश के कारण प्रायः एक छोर पकड़ लेते हैं। फलतः रस की धारा का स्पर्श नही हो पाता, ज्ञान-धारा का तट-मात्र प्रदर्शित हो पाता है। विवादों की निस्सारता का यही मूलभूत कारण है। जीवन को समझने की पूर्व शक्ति इनमें नहीं है। जीवन को अकाल के समय चुराकर कुत्ते का माँस खाने को उद्यत गायत्री-मंत्र के प्रणेता विश्वामित्र समझ सके थे। यही कारण है कि विश्वामित्र इत्यादि के वाद, या यो कहिए भारत के वाद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आज भी जीवित हैं, तीस-पैतीस करोड़ लोगों द्वारा माने जाते है, बाहर के भी कितने ही मैक्समूलर और शॉपेनहार उन्हें मानते हैं, और पश्चिमी वाद तथा दर्शन केवल शास्त्रीय अध्ययन एव वाद-विवाद के विषय बनते चले जा रहे हैं। देखना, आज के व्यक्तिवाद, समाजवाद आदि

की भी यही दशा होगी क्योंकि ये वाद भी एकागी है जीवन धारा को समग्र रूप में नहीं, तट के रूप में देखते हैं। सफल तथा सच्चा वाद वह है, जो इस अनन्त तथा दुर्गम ब्रह्माण्ड एवं अनन्त तथा दुर्गम जीवन की प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष अनुभूतियो को समझते हुए, जीवन को आन्तरिक तथा बाह्य दोनों दृष्टियों से उल्लास प्रदान करने की क्षमता रखता हो।

सुलोचना–राम....।

हेमचन्द्र–राम विश्व–इतिहास की महत्तम विभूति हैं। मनुष्य कितना पूर्ण हो सकता है, राम इसके प्रतीक हैं। वह इतिहास के सर्वश्रेष्ठ नेता हैं। पूर्वी तथा पश्चिमी भारत, उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ, द्रविड़ तथा आर्य, कोल तथा किरात–इन सबको 'एक' बनाने वाले भारतीय राष्ट्र के महत्तम निर्माता राम ही तो थे। राम ने महाद्वीप को राष्ट्र बना दिया। संसार के इतिहास में ऐसा जादू और कौन कर सका है? शक्ति से प्रेम का जो पावन समन्वय राम न कराया, वह संसार के इतिहास में दूसरा कोई नहीं करा पाया। राम–सा शासक. उन–सा पुत्र पति, पिता, स्वामी, शिष्य तथा सेवक और कौन हो सका है? जीवन के प्रत्येक श्रेत्र में वह सर्वश्रेष्ठ थे। वह प्रत्यक्षवादी थे, वह आदर्शवादी थे, वह साम्यवादी थे। वह पूर्ण मनुष्य थे या वह ईश्वर थे। पूर्ण मनुष्यत्व ही ब्रह्मत्व है। उनका आदर्श भुलाकर पथ–भ्रांत तथा विश्रान्त पश्चिम की अन्धानुकृति करने वाला भारत किधर जायेगा, पता नहीं? वह दीवार की ओर देखने लगा।

सुलोचना चुपचाप बैठी सुनती रही। हेमचन्द्र उसकी यह स्थिति देखकर हँस पड़ा। बोला–होगा, कहिए, कैसे कष्ट किया?

सुलोचना की चेतना–सी आई। बोली–यह भी पूछिएगा?

हेमचन्द्र चुप। कुछ रुककर कहा–मेरी नौकरी छूट गई है। कल श्री स्वरूपनारायण शास्त्री ने मुझसे त्यागपत्र ले लिया। वेतन भी नहीं मिला। धनवान के हृदय नहीं होता। कल दावा दायर करूँगा।

सुलोचना–यह तो बडा बुरा हुआ। यदि पिताजी स्वरूपनारायण से कह दे तो वह अपनी....।

हेमचन्द्र–सिफारिश होने पर मैं अपमानित बनकर काम कैसे कर सकता हूँ? धनवान स्वरूपनारायण मेरे वेतन को भी हड़पना चाहते हैं।

सुलोचना–धनवान का बुरा होना नैसर्गिक नहीं है। प्राचीन काल के

अनेक महापुरुष अत्यन्त सम्पन्न कुलों के थे। राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध राज-परिवारों के व्यक्ति थे। निकट से ही देखिए, सर रॉबर्ट ओवेन, एंजेल्स टॉल्स्टॉय कम धनवान न थे। धनवान के भी हृदय हो सकता है। यह ठीक है कि अधिकांश धनवान हृदयहीन होते हैं।

हेमचन्द्र-सहृदय और संवेदनशील होने पर कोई व्यक्ति धनवान बन ही नहीं सकता।

सुलोचना-खैर, इस विषय को जाने दीजिए, मुझे आपकी नौकरी के जाने का बड़ा सदमा है। अब तो आपको ट्यूशन-फीस लेनी ही होगी। मैंने पिताजी तक से कहा है कि आप फीस लेते हैं।

हेमचन्द्र-मनुष्य परिस्थितियों से प्रभावित होता है, यह ठीक है। किन्तु मनुष्य को परिस्थितियों के कारण अपनी चारित्रिक दृढ़ता न छोड़ती चाहिए। मै आपसे पहले चाहे रुपए ले भी लेता, पर अब न लूँगा। यदि आप अधिक जोर देंगी, तो मेरा हृदय दुखेगा। साथ ही, मैं आना बन्द न करूँगा।

सुलोचना-होगा, मुझे तो पढ़ने से प्रयोजन। पढाने वाला चाहे खाए या भूखा रहे। वह ठठाकर हँस पडी। किन्तु आँखों से आँसू निकल आए। हेमचन्द्र के देख सकने के पूर्व ही उसने आँसू पोंछ लिए।

हेमचन्द्र-सच कहता हूँ सुलोचना 'जिस दिन मैं राजपुर नही जाता, चित्त कुछ विशृंखल रहता है। ये दो दिन जैसे बीते हैं, मैं ही जानता हूँ। डरता हूँ कि कहीं यह मर्ज बढ़ता न जाए। हमारा और आपका जीवन दो भिन्न दिशाओं मे बहने वाली धाराओं की तरह है। यह स्नेह दु.ख ही होगा, सोचता हूँ तो काँप उठता हूँ।

सुलोचना-स्नेह सुख कब हुआ है? वह चुप हो गई। कुछ देर तक बोल न सकी। सिर झुकाए बैठी रही। सहसा उठकर खडी हो गई और बोली-आपको मेरी सौगन्ध है आप नित्य आइएगा! यह कहकर वह आँखों पर रूमाल फिराते हुए नमस्कार किए बिना ही बाहर निकल गई।

□□□

दूसरे दिन हेमचन्द्र सबेरे दस बजे कचहरी पहुँचा। ओवरकोट बेचकर तीस

रुपए पाए थ। व अन्टी में थे। कोर्ट उसे प्रिय स्थान न प्रतीत हुआ। युग की परिस्थितियों से अपन बाह्य तथा आभ्यन्तर को सँवारने वाले मँजे हुए वकीलो, आत्मा को चाँदी क टुकड़ों पर बेच देने वाले मुंशियो, पेशकारों, चपरासियो और हृदयहीन पैनी निगाह वाले मुकदमेबाजों के बीच में हेमचन्द्र को ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे न्याय के बाजार में वह अकेला ही है। उसे बड़ी ग्लानि हुई।

इन्साफ क बाजार का नजारा ही अनोखा था। मुकदमेबाजों की सख्या के बराबर ही वकील-मुंशी दिखाई पड़ रहे थे। कुछ अखबारो के हाँकर खबरों की कमर तोड़कर चिल्लाते हुए फिर रहे थे। बाहर दुकाने लगी थीं। अन्दर एक होटल में तिगुनी कीमत पर सामान बिक रहा था। दुकान 'लसन्स' वाली थी। कानून अनुचित पर औचित्य की मुहर लगा देता है! हेमचन्द्र को न्यायालय एक नई दुनिया ही प्रतीत हुई। उसे अब पता चला कि लोग पुलिस-विभाग के कर्मचारियों स क्यो इतना अधिक डरते है। कचहरी म यदि किसी के चेहरे पर मुस्कान थी तो उन्हीं के चेहरों पर थी।

मिस्टर आर एस श्रीवास्तव बडे वकीलो में माने जाते थे। थे तो युवक, लेकिन कई बड़े प्रसिद्ध मुकदमे जीत चुके थे। अत: अच्छी ख्याति थी। बी ए. में हेमचन्द्र के सहपाठी रह चुके थे। इसलिए हेमचन्द्र उनके बस्ते पर पहुँचा। वकील साहब अभी न आए थे। मुंशीजी उपस्थित थे। नाम था भोगीलाल, बिखरी मूछे, मुडी दाड़ी, तिरछी नाक, कान पर कुछ हटकर चश्मा, चमकती आँखें, खल्वाट थे। सिर झुकाए कुछ लिख रहे थे। हेमचन्द्र ने पूछा—श्रीवास्तवजी कहाँ है?

मुंशीजी ने आँखें उठाकर देखा। हेमचन्द्र के चेहरे पर सम्पत्ति-जन्य चिकनाई नही दिखलाई पडी। उपेक्षा-पूर्वक बोले—कहिए, अभी आते होगे।

हेमचन्द्र—एक दावा......

मुशीजी—कैसा? किस पर? किसलिए?

हेमचन्द्र—वेतन इत्यादि का रुपया बाकी है, तीन सौ का दावा श्री स्वरूपनारायण शास्त्री पर करना है। कागजात सब ठीक है।

मुंशीजी—हो जायेगा, डिग्री होगी। यह कहकर वह अपने काम में लग गए। फिर कुछ रुककर बोले—कम-से-कम पचास रुपये खर्च होंगे। कोर्टफीस, वकालतनामा, पेशकार, चपरासी और मुंशी में लगेंगे। वकील की फीस अलग होगी।

हेमचन्द्र की आँखे फैल गईं, फिर भी वकील साहब की प्रतीक्षा करते हुए कुछ देर बैठा रहा। घंटा भर प्रतीक्षा करने के बाद वकील साहब आए। अब तक और कई व्यक्ति बस्ते पर आकर बैठ चुके थे। वकील साहब ने हेमचन्द्र को देखकर तपाक से हाथ मिलाया। पूछा—कहिए, कैसे कष्ट किया?

हेमचन्द्र ने अपनी सारा कहानी सुना दी। वकील साहब बोले--फीस की तो कोई बात नहीं, मगर और तो लगेगा ही। पेशकार अपनी बात मानता है लेकिन उसने दो-रुपए का नियम बना लिया है। हर पेशी दो उसे, एक चपरासी को देना पडेगा. नहीं तो केस बरसों लटका रहेगा। वैसे डिग्री जल्दी ही हो जायेगी। बोलिए, आप क्या लाए हैं?

हेमचन्द्र जो लाया था, वकील साहब के हाथ पर रखकर बोला—देखिए, स्थिति बड़ी भीषण है। आपके हाथ में ही लज्जा है।

वकील साहब बोले-सब ठीक है, कोई बात नहीं होगी। यह कहकर उन्होंने तीन-चार स्थानो पर हेमचन्द्र के हस्ताक्षर कराये और निष्कर्ष बतलाया—अब आप जाइए। दावा हो जायेगा, पेशी की खबर आप ले लीजिएगा। और वे अपने दूसरे मुवक्किल से बात करने लगे।

हेमचन्द्र नमस्कार करके चल दिया, परन्तु घूम-फिरकर उसने देखा साढ़े ग्यारह बजने पर भी बहुत से न्याय करने वाले नहीं पधारे हैं। पेशकार और चपरासी चाँदी काट रहे हैं। खालिस हराम का माल छानने वाले लोगों के चेहरों पर जो कुत्सित तेजाभास होता है, यहाँ उसी की रौनक थी। बेचारे ग्रामीणों को सभी लूट रहे हैं। तहसीलदारों से लेकर जजों तक की अदालतों मे हुजूरों की उपस्थिति में खनाखन चल रहा है। तारीखें जिन व्यक्तियो की ढाई-ढाई, तीन-तीन महीने बाद पडी है, वे आज आशा लगाये बैठे हे। वकील लोग अत्यधिक व्यस्त हैं। पाप में कितनी व्यस्तता हो सकती हे, कचहरी से बढ़कर इसे कहीं नही देखा जा सकता। जज-साहब की कचहरी मे खड़ा एक बूढ़ा ग्रामीण रो रहा था—आज तीन साल हो गये दावा दायर किए, चार-सौ रुपए खर्च हो चुके, जमीन बेदखल पड़ी है, कर्ज मे डूबा हूँ। वकील साहब ने आज भी पच्चीस रुपये मागे। कहाँ से देता? गाली देकर भगा दिया। भैया...।

दूसरा—दादा, यह तो अदालत है, क्या तुम ही ऐसे हो? ऐसे तो सभी

है यह राज काज हे रोओ मत नही ता चपरासी गर्दनिया लगाकर बाहर ढकेल देगा।

हेमचन्द्र ने पहली बार जाना कि राज-काज और अन्याय पर्यायवाची शब्द हैं। क्या यही न्याय का नाटक है? पाश्चात्य शासकों द्वारा शोषण के लिए स्थापित की गई भ्रष्टाचार की जननी इन अदालतो मे न्याय बिकता है, नीलाम होता है जा व्यक्ति जितना खर्च करके न्याय खरीदे, खरीद ल। उचित-अनुचित न्याय-अन्याय इस इन्साफ के बाजार में कौन देखता है?

वह देर तक कचहरी में घूमता रहा, बड़े अनुभव हुए। वकील गवाहों को तोते की तरह कैसे पढ़ाते हैं, झूठ को सच कैसे बनाते हैं, पैसा कैसे ऐंठते है. कैसे दो रुपए पेशकार को देने का बहाना लेकर अपनी अन्टी में करते हैं या एक पेशकार को देकर एक अपनी जेब में रखते हैं, कैसे पेशी पर पेशी पड़वाकर लूटते है, यह सब देखा। सोचा--जब तक कानून की ओट लेकर सत्य को असत्य तथा असत्य को सत्य बनाने वाले वकील बने रहेंगे, तब तक सच्चा और सस्ता न्याय मिलना सम्भव ही नहीं है। न्याय में न्याय पाने वाले और न्याय देने वाले के अतिरिक्त किसी बीचवाले की क्या आवश्यकता है?

यह सब देखकर हेमचन्द्र को अपने ऊपर भी खेद हुआ--न जाने कौन से पातक किये थे, जो इस नरक में आना पड़ा, जहाँ अनेक अधर्मी-यमराज बैठे कानून की नंगी व्याख्या के आधार पर 'न्याय' बेच रहे हैं, जहाँ कुत्तो की तरह ग्रामीणों के जीवित कंकालों पर टूटने वाले वकील दौड-धूप कर रहे हैं, चीलो की तरह पेशकार झपट्टे मार रहे हैं और कौओं की तरह चपरासी अपना उदर भरने के लिए सन्नद्ध हैं। यह न्यायालय है या न्यायश्मशान? यही सब सोचते हुए वह अपने गाँव को लौट गया।

स्वरूपनारायण शास्त्री को हेमचन्द्र के त्यागपत्र के ढाई महीने बाद समन मिला। उनके लिए यह खेल था। दो मुख्तार नियुक्त थे, जो मुकदमेबाजी के अध्ययन का विषय होने पर इस विषय में कम-से-कम पी-एच.डी. होते।

शास्त्रीजी ने मामला उनके सिपुर्द किया। वे बोले—दो साल बच्चा को दौड़ायेंगे, तब केस खारिज करा देंगे।

शास्त्रीजी—इधर तब तक वह हाथ-पैर तुड़वाकर अस्पताल का सेवन करेगे। देखो बदमाश को, मेरे खिलाफ प्रचार कर रहा है। विद्यार्थी भड़क गए है। कुछ विद्यार्थी विद्यालय छोडकर चले गये हैं। यह नायब-तहसीलदार का भाई ब्रजेन्द्रशंकर नेता बना है। क्या करूँ, तहसीलदार का डर है, नही तो जहन्नुम पहुँचा देता इस छोकरे को।

मुख्तार चले गये। शास्त्रीजी बैठकर हेमचन्द्र को पिटवाने की योजना बनाने लगे। आज नूरेखाँ को उन्होंने इसीलिए बुलाया था। थोड़ी देर में नूरखाँ आता हुआ दिखाई पड़ा। फटा रेशमी तहमद, जीर्ण सैंडो बनियान, फटे नवाबी जूते, शराब के नशे में चूर, लाल अंगार-सी आँखें, हल्की-सी नूर और छोटी-छोटी मूंछें, लाल तवे की तरह जलता हुआ मुख टेढ़ी मस्त चाल और झूमती बाँहें—यही नूरेखाँ थे, जो रुपये मिलने पर एक बार तहसीलदार साहब को भरी अदालत में जूता मार बैठे थे। आकर शास्त्रीजी को सलाम किया। शास्त्रीजी ने सिर हिलाया और कहा—आ गए नूरेखाँ।

नूरेखाँ—हाँ, महाराज, किसे मारना है? कितना मारना है? क्या मिलेगा? कब मारना है?

शास्त्रीजी—मनोहरपुर के हेमचन्द्र के हाथ-पैर तोड़ने हैं। सौ रुपये मिलेंगे।

नूरेखाँ सौ की लम्बी रकम सुनकर प्रसन्न तो हुआ, किन्तु बोला—हेमचन्द्र तो भला आदमी है, शास्त्रीजी।

शास्त्रीजी—वह भला है या बुरा, यह समझने की बात नही है। बात तो उसे मारने की है। आधे रुपए पेशगी मिलेंगे, काम न होने पर सदा के लिए टूट जायेगी।

नूरेखाँ—कसम खुदा की, शास्त्रीजी, उसे मारने को जी नहीं चाहता। लेकिन सौ भी कम नहीं होते। खैर होगा, लाइए, मारूँगा।

शास्त्रजी—मै अकबरसिंह को यह काम सौंपूँगा। तुम जिसकी बड़ाई करते हो, उसे कैसे मारोगे? अभी तुम्हें पता है कि नहीं, हेमचन्द्र मुहम्मद साहब की कितनी निन्दा करता है? उस मस्जिद के पास परसाल जिन लौंडा ने सुअर काटकर फेंका था, उनका सरगना हेमचन्द्र ही तो था। ऊपर स

मुसलमानों जैसी बाते करता है। मेरा नौकर रहा है, मैं उसे जानता हूँ। तुम क्या जानो?

नूरेखाँ का क्रोध भड़क उठा। बोला--कब मारूँ? मौका....?

शास्त्री जी--रात को वह राजपुर की ओर से टहलते हुए आता है। धर-धमको। न कोई गवाही, न साखी। आगे जो कुछ होगा, उससे मैं निबट लूँगा। बोलो, क्या कहते हो?

नूरेखाँ--आज ही लीजिए। हाँ, रुपए तो लाइए। चलूँ, देर हुई पिए।

शास्त्रीजी ने नियमानुसार आधे रुपए दिए और नूरे खाँ ठेके की ओर लपका। शाम का समय था ही, थोड़ी देर में ही उसे बटहे के पुल के निकट छिपकर बैठना था। भयंकर कर्म करना था। किन्तु वह अभ्यस्त था। इतना होने पर भी उनके मन में हेमचन्द्र के प्रति दया के भाव उठ रहे थे। शास्त्रीजी की बातों का स्मरण करने पर वे दया के भाव हट जाते थे। नूरे खाँ ने आवश्यकता से कुछ अधिक शराब पी, और एक बोतल बगल मे दबाकर कुछ खाने के लिए निकल पड़ा। रात होते ही वह निश्चित स्थान की ओर चला। उसकी जेब में नौ इंच वाली करौली पड़ी थी। दूसरी जेब मे रुपए गरमा रहे थे।

□□□

ब्रजेन्द्रशंकर हेमचन्द्र का सबसे प्रिय शिष्य था। वह राजपुर में रहता था। भाई नायब तहसीलदार थे। पिता जिले के सीनियर पुलिस सुपरिंटेंडेंट थे। स्वस्थ और प्रभावशाली नवयुवक था। हेमचन्द्र को बहुत चाहता था।

जिस दिन से हेमचन्द्र का कॉलेज आना बन्द हुआ, ब्रजेन्द्रशंकर ने उसी दिन से विद्रोह कर दिया। उसका छात्रों पर प्रभाव था। उसने खुलेआम स्वरूपनारायण शास्त्री के कारनामों का भंडाफोड़ किया। किस प्रकार फीस माफ या आधी नहीं की जाती और नकली रजिस्टरों में माफ या आधी दिखलाई जाती है, किस प्रकार हजारों का चन्दा दूर-दूर तक से वसूल कर डकार लिया जाता है, किस प्रकार शिक्षा के व्यापार की प्रतीक संस्था को थोक दुकान का रूप दिया जाता है तथा किस प्रकार नाम कमाया जाता है,

इन सब बातों की जानकारी उसे तो थी, हेमचन्द्र से और प्राप्त हुई। जब उसका पैम्फ्लेट निकला, स्वरूपनारायण के मुख पर कालिख पुत गई। विद्यार्थियों ने आम हड़ताल कर दी। प्रिंसिपल मुखर्जी पिटते-पिटते बचे। सारे जिले में मुखर्जी की नग्न प्रान्तीयता और घृणास्पद अवसरवादिता का ढोल पिट गया। विद्यार्थियों का संगठन इतना सुदृढ़ था कि स्वरूपनारायण गुण्डों से काम लेने का स्वप्न भी न देख सके और कोई गुण्डा इस स्थिति में तैयार भी न हो सकता था। स्थिति से लाभ उठाकर राजपुर डिग्री कॉलेज के प्रिंसिपल ने विद्यार्थियों को अपने यहाँ आमंत्रित किया। शास्त्रीजी की संस्था दो महीने के भीतर ही जीर्ण हो गई। शास्त्रीजी को सबकी जड़ में हेमचन्द्र ही दिखाई दिया। अतः उन्होंने विशुद्ध हिंसा का अवलम्ब ग्रहण किया और नूरेखाँ को नियुक्त किया कि हेमचन्द्र को अधमरा करके छोड़ दे या धर-धमके, न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी। ब्रजेन्द्रशंकर का कुछ भी बिगाड़ सकना कठिन था। किन्तु उन्हें विश्वास था कि यदि हेमचन्द्र मरा या महीने-दो महीने के लिए चिकित्सालय मे पड़ा रहा, तो सब काम बन जायगा।

ब्रजेन्द्रशंकर जानता था कि शास्त्रीजी हेमचन्द्र को पिटाकर, आतंक दिखाकर, अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। वह सदा टोह में लगा रहता कि शास्त्रीजी कौन-सा हथकण्डा खेल रहे हैं। नूरे खाँ की घटना उसे ठीक-ठीक विदित न हो पाई। फिर भी उसने हेमचन्द्र को चेतावनी दे दी—मास्टर साहब, स्वरूपनारायण अब नग्न पैशाचिकता पर उतर आया है। आप सतर्क रहिएगा।

हेमचन्द्र शान्त तथा सन्तोषी व्यक्ति था। बोला-ईश्वर जो करता है, ठीक करता है। हॉं, मैं असावधान न रहूँगा। मुझे तो आशा न थी कि यह इतना नीच होगा।

ब्रजेन्द्रशंकर—आज के सस्ते राजनैतिक युग में जो व्यक्ति तूफानी और बनावटी भाषणों, मूर्ख-मोहिनी विद्या तथा पाखण्ड से जनता को मोह लेता है, वही सफल नेता कहलाता है। सबके लिए यह बात लागू नही हो सकती, पर छुटभैये के लिए तो यह पूर्णतः सत्य ही है। चुनाव में इसी शास्त्री ने हजारों जाली वोट डलवा दिए और सफल हो गया। उधर भाषणों में विनोबा भावे को भी मात करने वाला गांधीवाद चलता था। यही तो आज का नेतृत्व,

है, जो विश्व को पाखण्डतत्र का रूप दिए दे रहा है। प्रजातत्र मे सच्चा ओर योग्य नेतृत्व कठिनता से ही मिलता है। अयोग्य तथा छूँछा जोश दिखाने वाले वस्तुतः असमर्थ व्यक्ति बड़े-बड़े पदों पर आसीन हैं। ये राजनीतिज्ञ स्वार्थ-प्रधान व्यक्तित्व वाले होते है तथा लोकप्रियता बढ़ाने के लिए सब कुछ करने में सन्नद्ध रहते हैं।

हेमचन्द्र—ठीक कहते हो!...मै इतना दुर्बल भी नहीं हूँ कि कोई व्यक्ति मुझे सरलता से मार ही ले। आगे प्रभु देखेगा!

ब्रजेन्द्रशंकर अपनी सहायता की बातें करके चला गया। हेमचन्द्र को मन-ही-मन भय प्रतीत हुआ। इच्छा हुई कि सुलोचना से कद दे कि सुबह पढना ठीक होगा। किन्तु इस संकोच के कारण कि वजह क्या बताएगा, कुछ भी न कह सका। उधर नूरे खाँ अपना कार्य करने के लिए प्रस्तुत था ही। हेमचन्द्र को गुमान न था कि मामला इतना कुत्सित एवं वीभत्स रूप धारण कर लेगा। उसे पेट की चिन्ता भी थी। हर समय शास्त्रीजी तथा उनकी करतूतों पर ही विचार करता रहता, ऐसा सम्भव न था। निश्छल हृदय दूसरे हृदयों को भी निश्छल समझ बैठता है। सच्चा व्यक्ति यह कल्पना कठिनता से ही कर पाता है कि कोई व्यक्ति असत्य की सीमा के नितान्त निकट पहुँच जाएगा।

□□□

आकाश में काले बादल दोपहर के बाद से ही घनीभूत थे। हवा जोर से चल रही थी। आज हेमचन्द्र का सिर दर्द कर रहा था। सुलोचना के यहाँ जाने की इच्छा कम ही थी। किन्तु सुलोचना के प्रति भावना इतनी स्निग्ध हो चुकी थी कि जाना ही पड़ा। बूँदा-बाँदी में कुछ भीग भी गया। सुलोचना प्रतीक्षा करती हुई मिली। बोली—आज आपको विशेष कष्ट हुआ है, नहीं तो देरी का उपालम्भ ही स्वागत करता। गरम दूध न जाने कब से प्रतीक्षा कर रहा है।

हेमचन्द्र ने अन्दर प्रवेश किया। कहा—उपालम्भ तो मिल ही गया, परन्तु ऐसे उपालम्भ की मिठास कहीं मुझे इसके रोज पाने की कामना न

उत्पन्न कर दे। वह हँस पड़ा। सुलोचना—आज मेरा परीक्षा-फल निकल गया। आप प्रतिज्ञानुसार मिठाई खिलाइए।

हेमचन्द्र--खुशी है. मिठाई भी खिलाऊँगा, किन्तु ।

सुलोचना--किन्तु-परन्तु कुछ नही। किन्तु-परन्तु चतुर व्यक्तियो के शस्त्र हैं, जिनमें वे दूसरे व्यक्तियों के अस्त्र-शस्त्र काट देते है। 'अगर' अपनी सुगन्ध में दूसरे पक्ष के तर्क उड़ा देता है, 'मगर' सारे तथ्यो को निगल जाता है।

हेमचन्द्र—मिठाई कब-कब खिलाऊँगा? आज, कल और जब तुम्हारा विवाह होगा, तब.. ! रुक गया।

सुलोचना दूसरे कमरे में चली गई। थोड़ी देर बाद कुछ उदास-सी लौटी, हाथ में नाश्ते का सामान था। बोली--पहले भोजन कर कीजिए। आज मै आपको घर न जाने दूँगी। आज मुझे आपको जाने देने में डर लगता है। मौसम. ..।

हेमचन्द्र—नहीं सुलोचना, इतना न डरो। मेरे जीवन में भय को अधिक स्थान नहीं है। तुम इस जीवन को न-जाने किन-किन स्वरूपों में देखोगी। क्षमा करना, 'तुम' का प्रयोग तुम्हारी आज्ञा के अनुसार ही कर रहा हूँ। क्या करूँ, ससार-भर का विरोध करने की शक्ति मुझ में है, किन्तु तुम्हारा आदेश टालना सम्भव नहीं है।

उसने लम्बी साँस ली और नाश्ता करने लगा।

सुलोचना--आप सदा ऐसी ही बातें किया करते हैं?

हेमचन्द्र—सुलोचना, मेरा हृदय बडा उद्वेगशील है। सोचता हूँ, तुम्हारी स्मृति का यह सूत्र कहीं दुखद बन्धन-मात्र ही न रह जाये। सुखद बन्धन की कल्पना न होने के कारण मैं तुम्हें भुला देना चाहता हूँ, किन्तु भुलाना तो दूर रहा, मैं भूलने को ही भूला जा रहा हूँ।

सुलोचना—आप मेरे हृदय को भी समझा कीजिए, बस। उस दिन मैंने जो कहा था कि नारी पुरुष से कम भावुक और अधिक कोमल होती है, वह शायद पूर्ण-सत्य न था।

हेमचन्द्र उठा और उसने सुलोचना का बायाँ हाथ पकडकर कहा—सुलोचना, मुझे माफ कर दो। जो भी हो, मैं अपना हृदय और जीवन तुम्हें दे चुका हूँ।

सुलोचना—आपको क्या पता कि किसी का हृदय और जीवन आप छीन भी चुके हैं।—वह रो पड़ी, किन्तु हाथ न छुडा सकी।

हेमचन्द्र ने उसका हाथ दबा दिया। सुलोचना का शरीर लाल और स्वेदयुक्त हो गया। वह कुछ न कह सकी। हेमचन्द्र अपने को भूल गया। उसने एक हाथ से सुलोचना का मुख घुमाकर उसके अधरों पर अपने अधर धीरे-से रख दिए।

इसी समय सर दिग्विजयनाथ और उनके दूर के एक रिश्तेदार रणंजयनाथ ने कक्ष में प्रवेश किया। रणंजयनाथ प्रान्तीय पुलिस ने एक बड़े अधिकारी थे। शातिर डाकू-गिरोह को पकड़ने के कारण ही सुपरिंटेंडेंट से अचानक तरक्की हुई थी। भव्य, गौर, सुदृढ़ शरीर था। पिता बहुत-बड़े जमींदार थे। आयु छब्बीस-सत्ताईस वर्ष की थी। सर दिग्विजयनाथ उन्हीं के साथ सुलोचना का ब्याह करना चाहते थे। दिग्विजयनाथ और रणजयनाथ ने जब यहाँ का दृश्य देखा तो दोनो, विशेषकर दिग्विजयनाथ, क्रोध से काँपने लगे। कुछ देर तक तो वे कुछ बोल ही न सके।

हेमचन्द्र और सुलोचना दोनो पीले पड़ गए। अपराधियों की भाँति सिर झुकाकर कुछ दूर-दूर पर खडे हो गए। हेमचन्द्र भयातिरेक में खड़ा न रहा सका, दीवार से टिक गया। उसे तुरन्त स्मरण हो आया कि कभी रणंजय उसका मित्र और सहपाठी था। बी. ए. करके वह पुलिस-विभाग में चला गया था। लज्जा, भय और आतंक के कारण उसका सिर चकराने लगा।

सर दिग्विजयनाथ गरजे—शोहदा कहीं का! देख, अभी हंटर से खाल खींचे लेता हूँ। स्वरूपनारायण ठीक ही कह रहे थे। उन्हीं की बात की परीक्षा के लिए भीगते हुए आया हूँ। देखो रणंजय, ठीक कहते थे न? आज ठीक हो जायेगा। हण्टर.....।

सुलोचना ने काँपते हुए कष्ट से कहा—किसी सज्जन का अपने घर में अपमान करना कायरता है। दोष मेरा है। उसने मुँह फेर लिया।

दिग्विजयनाथ—चुप रह! इस दुष्ट की खाल खींचे बिना मैं नहीं मान सकता। हरखू.....।

रणंजयनाथ—पिताजी, जब दोष नहीं है, तब उसे न मारिए। छोड़ दीजिए। जाओ भाई, अब कभी ऐसी चेष्टा न करना।

दिग्विजयनाथ—नालायक, कमीने की हड्डी-पसली तोड़ने से मुझे

क्यो रोकते हो?

रणंजयनाथ--पिताजी, दोष पूरा उसी का नहीं है। उसे मैं जानता हूँ। जाने दीजिए। मैं इस विषय को सचमुच भुला दूँगा, आप भविष्य का ख़याल न कीजिए। यही तो यौवन की भावुकता है। जाओ, हेम...!

दिग्विजयनाथ–निकल जा, कमीने, क्यों ... ?

हेमचन्द्र बाहर निकल गया।

□□□

सर दिग्विजयनाथ की कोठी से निकलने पर हमेचन्द्र को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह मृत्यु के मुख और आतंक के उदर से निकलकर आया है। रात हो गई थी, थोड़ा-थोड़ा पानी बरस रहा था, अँधेरा घनीभूत था, बादल गरज रहे थे। विचारों के तूफान मे तिनके की तरह उड़ता हुआ हेमचन्द्र चला जा रहा था। खेद, लज्जा तथा अस्वस्थता के कारण वह सम्यक् रूप से न तो भविष्य के विषय में सोच पाता था, न वर्त्तमान के।

अचानक खरक की आवाज से वह काँप उठा। ज्यों ही ऑखें उठाकर धुँधलेपन में देखा, एक भयानक आकृति सामने दिखाई पड़ी और साथ ही दिखाई पड़ी लम्बी, सफेद, चमकती, चीज। हेमचन्द्र का शरीर काँप गया। किन्तु वह सचेष्ट हुआ, होना ही पड़ा। भय का सीमान्त आत्मरक्षा का साहस बन जाता है।

आकृति ने हाथ उठाकर वही सफेद चीज़ हेमचन्द्र के सीने का लक्ष्य करके मारी। हेमचन्द्र फुर्ती से हट गया। स्थानातरित होने के कारण वह व्यक्ति झूमकर गिर गया, हेमचन्द्र उसके ऊपर चढ़ बैठा और उसके हाथ से चाकू छीनकर पेट में घुसेड़ दिया। रक्त की धार 'या अल्लाह' की चीख के साथ निकल पड़ी, वह व्यक्ति प्रमत्त की भाँति उठकर खड़ा हुआ। हेमचन्द्र को धकेलकर चाकू छीन लिया और अलक्ष्य प्रहार करके गिर पडा। हेमचन्द्र के हाथ मे चोट तो गहरी आई, किन्तु वह खतरे से बाहर था। रूमाल निकालकर पट्टी बाँधी और धैर्यपूर्वक थाने की ओर चला। थाना कुछ दूर था। हेमचन्द्र चल तो दिया, पर दस कदम चलने पर उसे प्रतीत

हुआ कि वह चल नही सकता। अतः एक वृक्ष के नीचे कराहते हुए लेट गया। थोड़ी देर मे पानी कुछ जोर से बरसने लगा, पेड़ के नीचे होने के कारण हेमचन्द्र तो सुरक्षित था, किन्तु पुलिया के पास सपाट मैदान में मृतप्राय पड़ा नूरे खाँ मृत्यु की बाट जोह रहा था। हवा के जोशीले ठण्डे थपेड़ों ने रही-सही संज्ञा को भी शीतल कर दिया। खून पानी में घुल गया, हेमचन्द्र भी हतचेत-सा पड़ा रहा।

सबेरे जब हेमचन्द्र ने प्रकाश का आभास पाया, उसने देखा, दर्जनों लाल पगड़ियाँ इधर-उधर चमक रही हैं। पुलिया के पास बडी भीड़ है। इधर कोई नही आया, थोड़ी देर बाद एक चीफ आए, पता नहीं क्यो, देखकर लौट गए, कुछ क्षण के पश्चात एक बडा जत्था थानेदार के साथ वहाँ उपस्थित हुए। चीफ साहब ने कहा--यह जिन्दा है।

इस वाक्य ने हेमचन्द्र को बता दिया कि उस पर आक्रमण करने वाला व्यक्ति अब इस संसार में नहीं है।

इसके बाद कानूनी झंझट चले, दारोगा साहब हेमचन्द्र को जानते थे। एक बार उनके कमजोर लड़के को पढ़ाकर पास करा दिया था। उन्होंने बताया--उधर नूरे खाँ मृत पड़ा है, उसके हाथ में चाकू है। हेमचन्द्र का बयान कमलबन्द कराया गया। थाने से उसे सीधे अस्पताल भेज दिया गया। अस्पताल में उसे पूरा एक महीना लगा। उसने भी सोचा-घर के दुखो से यहाँ पड़ा रहना ही अच्छा।

इस एक महीने के बीच शास्त्रीजी ने अपनी परिस्थिति सम्हालने की जी-जान से कोशिश की। उन्हें अचरज हुआ कि नूरे खाँ जैसे शातिर कातिल को हेमचन्द्र ने कैसे मार डाला। फिर भी नूरे खाँ की मृत्यु उन्हें बचाने की दृष्टि से हर्षजनक रही। कुछ रुपये भी बचे। थानेदार जान तो गये थे भीगे नोट किस जगह के हैं, लेकिन कर क्या सकते थे?

शास्त्रीजी ने इस बीच ब्रजेन्द्रशंकर से छुट्टी पाने की प्रतिज्ञा की। नए कलेक्टर साहब से उन्होंने विशेष रब्त-जब्त पैदा किया। डालियाँ लगाई, कॉलेज मे बुलाया, मानपत्र दिया। पुरस्कार वितरण के समय ब्रजेन्द्रशंकर का गिरोह गड़बड़ करते हुए दिखाई पड़ा। शास्त्रीजी ने कलेक्टर साहब को खूब भरा। स्वयं कलेक्टर साहब ने नायब-तहसीलदार की बदली का आश्वासन दिया। वचन के वह पक्के निकले। कुछ दिनों में ही ब्रजेन्द्रशंकर विवश

होकर अपने भाई के साथ किसी दूरस्थ स्थान को चला गया। पर कहता गया—"अपने राम पढना-लिखना छोड़ चुके हैं। एक पैर यहीं रहूंगा। देख लूँगा इस गुरु-घंटाल को!" शास्त्रीजी पर इसका क्या प्रभाव पड़ता। उन्होंने सन्तोष की साँस ली।

इसके बाद उन्होंने एक नया शिगूफा छोड़ा। पर्चे छपाकर बंटवाए कि हमारे विद्यालय में अशिक्षित राष्ट्र के कल्याणार्थ आधे शुल्क पर शिक्षा दी जाती है। यही नही, उन्होंने राजपुर कॉलेज के प्रिंसिपल को इस शर्त पर दो सौ रुपए अधिक वेतन दे कर अपने विद्यालय का प्रिंसिपल बना दिया कि वह अपनी संस्था के छात्र यहाँ ले आयेंगे। कालीपद टापते ही रह गए। स्फूर्ति तथा कौशल के साथ शास्त्रीजी ने कॉलेज को फिर से खड़ा कर दिया। आमदनी पहले से कुछ ही कम रह गई, और बाहरी रूप पहले से कहीं अधिक व्यापक हो गया।

इसी महीने में अदालत की तारीख पड़ी। हेमचन्द्र की अस्पताल से भेजी गई अर्जी दबवाने में शास्त्रीजी को स्वयं कचहरी जाना पड़ा। बीस रुपये खर्च हुए। इसके अतिरिक्त मिस्टर श्रीवास्तव को केस देने का आश्वासन। वे भी अनुकूल हो गए। अन्ततोगत्वा उस पेशी में अनुपस्थित होने के कारण हेमचन्द्र का दावा खारिज हो गया। नक्षत्र शास्त्रीजी के अनुकूल पड़ गया था।

इधर बाबूलाल ने अच्छा मौका देखा। पुरानी दुश्मनी के प्रतिकार और प्रत्यक्ष लाभ के लिए इससे बढ़कर अवसर कब मिल सकता था? एक रात वह हेमचन्द्र का घर भी खाली कर आए—बर्तन-भाँड़े, सामान-बक्स आदि सभी कुछ इत्मिनान से उठा ले गए। किसी को मालूम भी न हुआ। न सेंध कटी, न दरवाजा टूटा। उन्होंने शान्तिपूर्वक सीढ़ी के द्वारा सब काम किया।

हेमचन्द्र को महीना-भर शहर के बड़े हास्पिटल में रहना पड़ा। नूरेखाँ के केस की जाँच-पड़ताल दारोगाजी के कारण अनुकूल हो गई थी। उधर से कोई उससे मिलने आता था, तो सुलोचना। वह प्रायः नित्य आती। नर्सों को कुछ दे देती, फल-फूल पाटे रहती और हेमचन्द्र के आराम के सभी प्रबंध किए रहती। उसने स्वीकार किया—आपकी नौकरी मेरे कारण छूटी, अपमान मेरे कारण हुआ, यह स्थिति मेरे कारण हुई। क्या अब आप मुझे..।

हेमचन्द्र—सुलोचना, मुझे रुलाओ मत। इस जीवन के अंधकारमय

मरुस्थलीय महाद्वीप की नील-धारा तुम्हीं तो हो। मेरे जीवन में सबसे मधुर, प्रिय और पवित्र वस्तु तुम्हारा प्रेम ही तो है। किन्तु मैं दरिद्र इस परम-निधि का अधिकारी यदि बना रह सकूँ...।

सुलोचना की आँखें गीली हो गई—यही जीवन नहीं, मेरा शाश्वत जीवन आपको न त्याग सकेगा।

वह आगे कुछ और न कहकर चुप हो गई।

हेमचन्द्र ने शीतल श्वास लेकर सुलोचना का हाथ अपने हाथ में ले लिया। बोला—मेरी विभूति, मैं तुम्हें रख सकूँगा?

□□□

अस्पताल से लौटकर हेमचन्द्र ने घर-बाहर की स्थिति देखी, तो सिहर गया। जीवन में पहली बार वह हताश तथा क्रोधाकुल हुआ। बाबूलाल का नया मलमल का कुरता और अहमदाबादी धोती देखकर ही जान गया कि उसका सब सामान कहाँ उड़ गया है? पुस्तकें तक चुरा ले गया था। हेमचन्द्र की दो हस्तलिखित काव्य-पुस्तकें भी लपेट में चली गई। यह शोक स्थायी था, जिसे वह सहन नहीं कर सका। मनोहरपुर इन्टर कॉलेज की स्थिति देखकर आश्चर्य हुआ। बाद में ब्रजेन्द्रशंकर के भाई की बदली का रहस्य तथा उसके मुकदमे के खारिज होने की कहानी भी विदित हुई। उसने गम खाने का निश्चय किया, जो गरीबों और दुर्बलों का एकमात्र आश्रय है।

सर दिग्विजयनाथ ने जो व्यवहार हेमचन्द्र के साथ किया था, वह फैल न पाने पर भी कुछ लोगों को विदित हो गया था। लोग सुलोचना की कारों के नम्बर याद रखने लगे थे। जब हेमचन्द्र लौट आया और सुलोचना रोज उसके यहाँ आने लगी, तो विभिन्न चर्चाएँ उड़ने लगीं। अब हेमचन्द्र को सुलोचना की आग्रहपूर्ण तथा विनम्र सहायता भी स्वीकार करनी पड़ी। अस्तु। उसका जीवन-क्रम तो चलने लगा, परन्तु सुलोचना की कृपा पर जीना स्पष्ट रूप से लज्जास्पद प्रतीत हुआ।

सर दिग्विजयनाथ अब सुलोचना के जीवन पर निगाह रखने की अधिक चेष्टा करने लगे थे। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि सुलोचना प्रायः

नित्य हेमचन्द्र के यहाँ जाती है और घटो बैठती है, तो आप से बाहर हो गये। गरज कर बोले--तू जानती है, मैं कौन हूँ? मेरा नाम सर दिग्विजयनाथ है! कमिनश्नर साहब तक झुककर हाथ मिलाने दौड़ते हैं। गवर्नर पार्टियों में आमंत्रित करते हैं। तू मेरी लड़की एक शोहदे भिखारी के यहाँ मारी-मारी फिरती है। उस लफगे...।

सुलोचना हेमचन्द्र के प्रति अपशब्द न सहन कर सकी, तैश में आकर बोली–पिताजी, आप एक सज्जन और विद्वान व्यक्ति को. .!

दिग्विजयनाथ--जो व्यक्ति दूसरे की बहू-बेटी तके, वह विद्वान और सज्जन नहीं कहा जा सकता।

सुलोचना–उसमें दोष मेरा है। गाली की पात्र मैं हूँ, वह नहीं। यह कहकर वह दूसरे कमरे में चली गई।

दिग्विजयनाथ ने जरा जोर से कहा–इज्जत मुझे तुझसे अधिक प्यारी है, याद रख मेरी पिस्तौल....

अन्दर से सुलोचना की आवाज आई--जिसका यह शरीर है, वही इसे ले ले, इससे बढ़कर अच्छाई और क्या हो सकती है?

दिग्विजयनाथ मूक-से रह गये, उन्हें पता चला हो या नहीं, दो बूँदे उनकी आँखों की कोरों से धीरे-से टपक कर कक्ष में बिछे कालीन पर चू पड़ीं। वह स्तब्ध रह गए, किन्तु उन्हें अपनी इज्जत का ध्यान था। बहुत देर तक सोचते रहे, फिर उस कमरे में घुसे जहाँ सुलोचना पडी रो रही थी। कुछ दयालु स्वर में बोले-बेटी, मुझ पिता की आज्ञा को न मानकर.. ।

सुलोचना–आपकी आज्ञा पर मैं कुएँ में कूद पड़ूँगी। किन्तु....

सर दिग्विजयनाथ मँजे हुए व्यक्ति थे। उनके केश धूप मे सफेद न हुए थे। कुछ सोचकर उत्साहपूर्ण स्वर में बोले–यदि हेमचन्द्र वही कह दे, जो मैं कहता हूँ, तो मेरी बात मानोगी?

सुलोचना सकपकाते हुए बोली–तब विचार करूँगी। मानने की बात बाद में आती है।

सर दिग्विजयनाथ ने नाड़ी परखी। करुण वाणी में बोले–मैं तो नदी के किनारे का वृक्ष हूँ, न जाने कब ढहकर बह जाऊँ? मैं अपने सामने ही तेरा विवाह होते देखना चाहता हूँ, वह भी अति शीघ्र ही। तू एम. ए है, बीस से आगे निकल गई, और....

सुलोचना–और भार हो गई हूँ।

दिग्विजयनाथ–भार क्या होगी? तेरा विवाह देखने की साध मन में है। नाती खिलाने का सपना देखता रहता हूँ। मेरे और कौन बैठा है? रणंजय को देख, उसी को मैने तेरे लिए चुना है। बलिष्ठ, धनी, योग्य, उदार, सुन्दर, सच्चरित्र ऐसा कौन व्यक्ति मिल सकता है? फिर अपनी पुरानी रिश्तेदारी मे आने वाले कुलीन घराने का भी है। मैं चाहता हूँ, तेरा विवाह इसी वसन्त में हो जाये। हेमचन्द्र भी यही चाहता है। इसी में सबको आनन्द मिलेगा।'' यह कहकर सर दिग्विजयनाथ रोने लगे और अधिक न बोल सके। स्फुट स्वर में सुलोचना ने सुना–मुझ बूढ़े की यह इच्छा पू.री...।

सुलोचना विचित्र स्थिति में पड गयी, उसके मुख से निकल पड़ा–हेमचन्द्र कह देंगे?

दिग्विजयनाथ कुछ रुककर बोले–एँ? हाँ...।

सुलोचना–अच्छा!

दिग्विजयनाथ तुरन्त ही अपने बैठके मे चले गये। सुलोचना पड़ी-पडी न जाने क्या-क्या सोचती रही।

दिग्विजयनाथ ने बैठके में आकर शोफर को कार तैयार करने का हुक्म दिया। कुछ दूर बाद वह मनोहरपुर पहुँच गए और सीधे हेमचन्द्र के घर में घुस गये।

दिग्विजयनाथ ने अन्दर जाकर देखा, तो हेमचन्द्र को घर में कहीं न पाया। इधर-उधर कोठरियों मे झाँकने लगे। देखा. एक दालान में वह चटाई पर पड़ा सो रहा है। सर दिग्विजनाथ को हेमचन्द्र की निर्बलता और दरिद्रता पर तरस आ गया। वह कुछ क्षण इधर-उधर देखते रहे, फिर इस प्रकार खाँसे कि हेमचन्द्र की आँखें खुल गईं। सामने उनको देखकर उसका चेहरा स्याह पड गया। वह प्रणाम भी न कर सका, किसी आपत्ति की आशंका से उसके शरीर में पसीना आ गया।

दिग्विजयनाथ मुस्कराते हुए बोले–क्यों बेटा, कैसी हालत है? मुझ पर गुस्सा तो नहीं हो?–कहते हुए उसी चटाई पर बैठ गये।

हेमचन्द्र की जान में जान आई, उठकर बैठ गया, प्रणाम करके बोला–अपराधी को दण्ड न मिलने पर भी कहीं क्रोध आ सकता है?

दिग्विजयनाथ–धन्य है! धन्य है! कवि अवतार होता है, मनीषी होता

है। बेटा, मुझे तो मारे शोक के भोजन नहीं रुचता। आज मैं माफी माँगने आया हूँ!—उन्होंने हाथ जोड़कर हेमचन्द्र की ओर अपना मस्तक झुका दिया।

हेमचन्द्र सकपका गया, हडबड़ाते हुए बोला—मैं पागल हो जाऊँगा, ईश्वर के लिए यह अन्याचार मुझ पर न कीजिए। आप यह क्या कहते हैं? कहिए, क्या आदेश है?

दिग्विजयनाथ—मानोगे? मैं उचित ही कहूँगा।

हेमचन्द्र—मानूँगा! किन्तु वह सिहर-सा गया, अधिक न बोल सका।

दिग्विजयनाथ—तुम देखते हो, मैं बूढ़ा हो चला हूँ। न जाने किस दिन कौन रोग घेर ले या चल बसूँ? अतः चाहता हूँ, सुलोचना का विवाह शीघ्र ही....।

हेमचन्द्र—जी।

दिग्विजयनाथ—हो जाता तो अच्छा रहता। वह कहती है, जब तक तुम आज्ञा न दोगे, विवाह न होगा। मैंने रणंजयनाथ से सम्बन्ध करने का निश्चय किया है। उनके पिता रुकेंगे नहीं। लड़का हाथ से निकल जायेगा। फिर ऐसा लड़का स्वप्न में भी न मिलेगा। मैं तुम से यही भीख..।'' इसके बाद आँसुओं की धारा का प्रवाह बढ़ गया, उनका स्वर विशृखल हो गया। दिग्विजयनाथ ने हेमचन्द्र के पैर पकड़ लिए। बोले—बेटा, मेरे केवल यही एक लड़की है। मेरी प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा, सुख-शान्ति सब तुम्हारे हाथ मे है। यह भीख दे डालो!

हेमचन्द्र कुछ न बोल सका। किन्तु वह इस स्थिति में भी न था कि अधिक समय तक चुप रह सके। दिग्विजयनाथ बोले—बोलो, बेटा!

हेमचन्द्र—मैं कह दूँगा कि वह विवाह कर लें, और उन्हें करना भी चाहिए।

दिग्विजयनाथ—बेटा, यही सब उसे भी समझा देना। जीवन भर ऋणी रहूँगा, तुम भी मेरे आशीर्वाद से सुखी रहोगे। देखो, बात से पलटना नहीं। मेरी मर्यादा तुम्हारे हाथ में है। सुलोचना से यह भी न कहना कि मैं यहाँ आया था। वह पूछेगी ही नहीं। देखो, ध्यान रखना। अच्छा, तो चलूँ।—वह बाहर निकल गए।

हेमचन्द्र दिग्विजयनाथ के जाने के बाद बड़ी देर तक उनकी बातों के बारे में सोचता रहा। उसके हृदय में क्रांति-सी मच गई, कुछ निश्चित न कर

सका। इसी बीच सुलोचना आ गई, हेमचन्द्र ने सुना–क्या सोच रहे हैं?

उसने कहा–प्रेम एक मधुर भ्रांति है। इस भ्रांति का मीठा रस इतना मादक होता है कि पीने वाला अपने को मुक्त नही कर पाता, सदा अतृप्त पिपासा से आकुल रहता है। प्रेम मानसिक दुर्बलता है, वह हार है, जीत नही, हानि है, लाभ नहीं अन्ततः शोकजनक है, उल्लासप्रद नहीं।

सुलोचना–ओह, तो यह सोच रहे थे! मैं तो कुछ और ही धारणा रखती हूँ। स्नेह ही वह सरस और शाश्वत लेप है, जो इस रूखे जीवन को स्निग्धता प्रदान करता है। प्रेम इस लौकिकता की रसहीनता में अलौकिकता के रस का प्रतीक है। इस जीवन के मरु मे वह अन्तःस्रोतस्विनी की मधुधार है। वह मृत्यु से भी अधिक दृढ़ है, उसकी हार की जीत है, हानि ही लाभ है, वेदना ही उल्लास है।....प्रेम के शब्दकोश में पराजय, निराशा तथा हानि का कोई स्थान ही नही मिलता।

हेमचन्द्र–प्रेम में उल्लास होता है, किन्तु पीड़ा उल्लास से अधिक होती है। कुछ क्षणों का उल्लास युगों की वेदना का कारण बन जाता है।

सुलोचना–इस जीवन मे अलौकिक उल्लास के कुछ क्षण युगों की पीड़ा से अधिक स्पृहणीय होते हैं।

हेमचन्द्र– प्रेम हृदय की इन्द्रिय-सुख-कामना या वासना का पुत्र है। वासना मे उल्लास कहाँ? इन्द्रियलोलुपता के पंक को धोने के लिए कवियों ने प्रेम की पवित्रता तथा अमरता के गीत गाये हैं। हम प्रायः यौवन के पराग से विलसित सुन्दर प्राणियों से ही प्रेम क्यो करते है? क्यों आयु में अधिक तथा असुन्दर प्रणियो से प्रेम नही करते? प्रेम का अन्त प्रणय है। प्रणय के मूल में मानवीय प्रकृति की अटल लिंगत्व भावना तथा प्रजननेच्छा छिपी रहती है। अतः प्रेम आत्मा का उल्लास नही, चंचल मन का प्रसाद है।

सुलोचना–वासना को आप हेय समझते हैं? वासना ही संसृति की शक्ति तथा उसकी रसमयी विभूति है। सस्ते आत्मज्ञानी वासना का अनुचित तिरस्कार करके सामान्य जनसमूह को अपनी कृत्रिम साधना का आडम्बर दिखाया करते हैं। पवित्र वासना मानवीय प्रकृति की शाश्वत विभूति है। यदि प्रेम वासना का पुत्र है, तो भी वह तिरस्कार योग्य नही।

हेमचन्द्र–होगा सुलोचना, मैं तुमसे तर्क में नहीं जीत सकता। तुम स्वयं विजय हो। आज के वैज्ञानिक युग में....।

सुलोचना–आज का युग वैज्ञानिक नहीं, राजनैतिक है। यदि युग विज्ञान का होता, तो विज्ञान शस्त्र-निर्माण करके अपने ही विनाश के लिए कदापि कटिबद्ध न होता। आज के विज्ञान का संचालन पंकिला राजनीति कर रही है। यही कारण है कि भयंकर तथा विनाशक शस्त्र आदेश-पूर्ति करने वाला विज्ञान स्वामिनी तथा स्वार्थलिप्त राजनीति के संकेत पर निर्मित कर रहा है। राजनीति का व्यक्तित्व विज्ञान के व्यक्तित्व को जन्मभूमि छोड़ने के लिए विवश कर सकता है, उसके प्राण तक ले सकता है। आज विज्ञान राजनीति का दास है। यही कारण है कि ध्वंस की सामग्री निर्माण की सामग्री से अधिक प्रस्तुत होती दृष्टिगोचर हो रही है।

हेमचन्द्र–अच्छा, राजनैतिक युग सही। मै विज्ञान हूँ, तुम राजनीति।

सुलोचना–मैं ध्वंस की. ।

हेमचन्द्र–मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ। वह हँस पड़ा।

सुलोचना–आप कवि होकर....।

हेमचन्द्र–कवि सबको न कह देना चाहिए। फिर तुम साक्षात् कविता होकर ऐसा कह रही हो। सबको कवि कह देना कवि शब्द का मजाक उड़ाना है। मैं कवि नहीं हूँ, यदि ऐसा हो पाता तो धन्य होता। किन्तु कविता ही जा रही है, कवि कहाॅ से बनूँगा। कहो! कब शादी है?

सुलोचना–शादी भारत में बार-बार नहीं होती।–उसने आँखें झुका लीं। हेमचन्द्र ने देखा, तो आँसू उसके कोमल कपोलों से होकर चटाई पर टपक पड़े।

हेमचन्द्र की आँखें भी डबडबा आईं। गम्भीर स्वर से बोला–विषमताओं का नाम ही जीवन है। हम-तुम एक हैं, सदा रहेंगे। किन्तु विश्व में बाह्य रूप से नहीं, अन्तरतर में आन्तरिक रूप से। आज तुम्हारे पिता आये थे। बहुत-कुछ कह गए, कर गये। मैं भी हृदय थामकर कह रहा रहा हूँ कि तुम रणंजयनाथ से विवाह कर लो। हमारा-तुम्हारा प्रेम वासना. .।

सुलोचना–मैं आपको दिखा दूँगी कि प्रेम वासना से परे भी रह सकता है। दूसरे विषय पर बात कीजिए। मेरा हृदय. ।

हेमचन्द्र–और मेरा हृदय?

सुलोचना–यदि आपके हृदय में मेरी इतनी वेदना होती, तो आप जो कह रहे हैं, वह न कह सकते।

हेमचन्द्र—मुझे क्षमा करो। मैं तुम्हारे हृदय को नहीं समझ सका। भूल हुई।

सुलोचना—क्षमा मैं चाहती हूँ।

हेमचन्द्र—यह शिष्टाचार का आडम्बर है। क्षमा उसी को मिलनी चाहिए, जिसने त्रुटि की हो।

सुलोचना—अच्छा, तो क्षमा मिल गई। अब आप जमकर बैठ जाइए। मै अपने हाथ से बनाकर कुछ सामान लाई हूँ। हम दोनों खाएँगे।

□□□

सर दिग्विजयनाथ रणंजयनाथ को दामाद बनाने के लिए आतुर थे। उधर रणंजय के पिता इसी वर्ष विवाह कर डालने के लिये कृत-संकल्प थे। किन्तु वह इतनी बड़ी रियासत के मूल्य को भी समझते थे। सबसे बढ़कर रणंजय यहीं सम्बन्ध करने के लिए निश्चित किए था। दिग्विजयनाथ को उससे बढ़कर लड़का मिलना संभव न दीखता था। अत: वह सब कुछ करने को तैयार थे।

जब हेमचन्द्र ने अपना असन्तुलित आश्वासन दिया, वह गद्गद हृदय हो गए। किन्तु दूसरे ही दिन सुलोचना ने विवाह न करने का निश्चय प्रकट कर दिया। वह बहुत बिगडे। जामे से बाहर हो गये। फिर नम्र पड़े—आखिर कारण क्या है? क्या हेमचन्द्र से विवाह करोगी? यह स्वप्न में भी नही हो सकता। तुम दोनों की लाशों का पता न लगेगा। बोलो, क्या हेमचन्द्र से विवाह....?

सुलोचना—मैंने विवाह न करने का निश्चय किया है। ब्राह्मण-कन्या हूँ। ऋषि-कन्याओं की भाँति ब्रह्मचारिणी रहकर ज्ञानान्वेषण करूँगी। इन्द्रियों का दमन....।

दिग्विजयनाथ—चुप, छोटे मुँह बड़ी बात कहती है। हेमचन्द्र....।

सुलोचना—हेमचन्द्र को अपमानित न कीजिए। कालिदास ने लिखा है—'अलोक्यसामान्यमचिन्त्यहेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।'

दिग्विजयनाथ विलायत में पढ़े थे। तुलसी-कृत रामचरितमानस तक

मुश्किल से पहुच हो पायी थी इस न समझे किन्तु सुलाचना स्वत शरमा गई। बोली—मैं किसी से विवाह न करूँगी। यदि आप खाना-खर्चा न दे सकेंगे, तो एम. ए हूँ, कही कोई काम कर लूँगी। मैं हेमचन्द्र के योग्य नही हूँ। रणंजय का मैं आदर करती हूँ। किन्तु प्रेम मैं उनसे नहीं कर सकती। बिना प्रेम का प्रणय बन्धन बन जाता है।

दिग्विजयनाथ—मैं जबरदस्ती करूँगा।

सुलोचना—आप विद्वान हैं। यदि यह आपको शोभा दे और उचित प्रतीत हो, तो कर डालिएगा। किन्तु इससे कोई सुखद परिणाम नही निकल सकता। हृदय को बलात् नही जीता जा सकता, उसे समर्पण करके प्रेम से जीता जाता है।

दिग्विजयनाथ समझ गए कि छोकरी का दिमाग अभी रास्ते पर नही है। वह हताश होने वाले व्यक्ति न थे। अब भी आशा थी। कुढ़कर चले गए। सोचा—सारा दोष इस नीच हेमचन्द्र का है। भिखारी होकर भी राजा बनना चाहता है। इसे यहाँ से हटवा दूँ, सब ठीक हो जाय। हत्या कराना ठीक न होगा। शायद सुलोचना पर बुरा प्रभाव पड़े। जमीन हड़प लूँ। बेकार है ही विवश होकर भाग जाएगा।

कानून का थोड़ा-सा व्यवधान इस मार्ग में था। किन्तु दिग्विजयनाथ बड़े चतुर थे। उन्होंने मनोहरपुर के धोबी परिवार के प्रमुख को बुलवा भेजा। यह परिवार बड़ा काबिल था। नूरेखाँ इसी के शिष्यों में था। यह एक दल था। घर में बीस-बाईस जवान थे। डाके डालना उनका पुश्तैनी पेशा था। हाँ, फूँक-फूँक कर पीते थे। दूर ही डाके डालते थे, निकट नहीं। महबीरा नेता तथा सरदार था। सर दिग्विजयनाथ महबीरा का बड़ा सम्मान करते थे। बैठने को कुर्सी देते थे। समय-समय पर काम जो निकलता रहता था!

महबीरा ने आकर पालागन किया। दिग्विजयनाथ ने बैठाल कर आदरपूर्वक जलपान कराया। महबीरा कृतार्थ हो गया।

बोला—सरकार, क्या हुकुम है?

दिग्विजयनाथ—इस दुष्ट हेमचन्द्र.....।

महबीरा—मूड़ काट दूँ, या नाक उड़ा दूँ? हुकुम भर हो जाय, फिर आगे क्या होता है? जहाँ बारह वारंट कटे हैं, वहाँ तेरह हो जाएंगे, और क्या होता-हवाता है?

दिग्वजयनाथ–अभी नहीं। उसकी जमीन की फसल काट लो। थानेदार को मैं हुक्म दे दूँगा। वह कुछ न कहेगा। और, जमीन तुम अपने कब्जे मे कर लो। मुकदमेबाजी मैं कर लूँगा।

महबीरा–कौन करेगा मुकदमेबाजी? रास्ते में ही शरीर के टुकड़े-टुकडे हो जायेंगे, सरकार! कल ही लीजिए।

दिग्विजयनाथ–देखो, मारपीट न करना। जब मैं बताऊँ, तब देखा जायेगा। वह स्वयं भाग जायेगा। घर बड़ा अच्छा है। तुम्हे ही दे दूँगा। समझ गए सब? अच्छा, अब जाओ।

महबीरा- मारेंगे नहीं। जमीन पर कब्जा कर लेंगे। घर....।

दिग्विजयनाथ -घर पर कब्जा मत करना। जब बताऊँ, तब करना। समझ गए?

महबीरा ने हाँ में उत्तर दिया और पालागन करके चला गया। दिग्विजयनाथ ने सोचा–देखो, शायद यह अस्त्र कारगर हो जाये। बातों से यह न मानेगा। लातों के देवता बातों से नहीं मानत।

महबीरा का भयानक आतंक था। उसने उसी दिन ऐलान करके हेमचन्द्र की सारी पकी फसल कटवा ली। बटाई वाले गरीब किसान रोते ही रह गए। हेमचन्द्र थाने को चला। महबीरा ने रास्ते में ही घेर लिया। ललकारा–नूरेखाँ लौंडा था। मैं महबीरा हूँ। हुकुम राजा साहब का है। आगे बढ़े, तो जान ले लूँगा। तुम किस खेत की मूली हो, तहसीलदार तजम्मुल हुसैन का मैंने भरे बाजार में कत्ल कर डाला था। तब तो कुछ हुआ ही नहीं। कौन इस पृथ्वी पर पैदा हुआ है, जो मेरे खिलाफ गवाही दे सके? मनोहरपुर से भाग जाओ। इसी में भलाई है। मुकदमे के चक्कर में न पड़ना, नहीं तो जान से हाथ धो बैठोगे।

हेमचन्द्र कुछ न बोला। वह सब कुछ पूरी तरह समझ गया। घर लौट आया। गाँव छोडकर जाने को जी न चाहता था। उसने जान लिया कि सुलोचना से सम्बध तोड़ने पर ही जान बचेगी। दिग्विजयनाथ, रणंजयनाथ ओर महबीरा का विरोध करने की शक्ति उसमें न थी। एक कठोर और मार्मिक पत्र सुलोचना के नाम लिखा, जिसमें अनुरोध किया गया था कि वह मनोहरपुर न आए। प्रेम बिना देखे भी जी सकता है। उसने सारा चिट्ठा खोलकर पत्र में रख दिया। भावावेश में उसे नौकरी छूटने, नूरेखाँ की घटना,

जमीन जाने आदि के मूल में सुलोचना ही दिखाई पड़ी। अतः पत्र की ध्वनि कठोर हो गई। रोते हुए हेमचन्द्र ने पत्र दुहराया। आँसुओं की बूँदों ने पत्र का रग बदरंग कर दिया। फिर भी, पत्र दुहराने के बाद उसने सन्तोष की साँस ली।

□□□

रणंजयनाथ उन चतुर व्यक्तियों मे थे, जो समय की गति को खूब पहचानते हैं। चतुरता तथा कूटनीति के कारण वह छोटी आयु में ही बड़े पद पर पहुँच गए थे। उन्होंने सुलोचना की स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन किया था। जानते थे, उसके हृदय में हेमचन्द्र के प्रति प्रगाढ़ स्नेह है। किन्तु परिस्थितियों को भी समझते थे। स्पष्ट था, हेमचन्द्र को यह रत्न प्राप्त न हो सकेगा। उन्होंने सुलोचना के ईर्ष्याजनक आचरण को भी स्पृहणीय बना रखा था। जानते थे, प्रेम भावावेश है, जो समय बीतने पर समाप्त हो जाता है।

वह प्रति सप्ताह कम से कम एक बार राजपुर आने की चेष्टा करते। बाह्यत. सुलोचना उनका आदर-सत्कार बड़े समारोह से करती। वह भी अपनी वीरता की साहसपूर्ण आख्यायिकाएँ सुनाया करते। सुलोचना भरसक दिलचस्पी दिखाने का प्रयास करती। यही नहीं, उनके स्निग्ध प्रश्नों का उत्तर भी वह नीरसतापूर्वक न देती थी। अतः अपूर्ण रूप से ही सही, रणंजयनाथ को यह आशा हो गई थी कि कभी न कभी वह सुलोचना को अपनी बना सकेंगे। उन्होंने दिग्विजयनाथ को शांति और धैर्य से काम लेने की सलाह दी–प्रेमाग्नि व्यवधानों का घृत जाकर और भी प्रज्ज्वलित हो उठती है।

दिग्विजयनाथ भी रणंजयनाथ की बात मानते थे। किन्तु आदत से मजबूर होने के कारण हेमचन्द्र को परेशान कर बैठे। वह शीघ्रता चाहते थे। अवस्था बहुत अधिक न होने पर भी वह मृत्यु से अधिकाधिक भयभीत थे। व्यक्ति जितना ही अधिक सुखी तथा सम्पन्न होता है, उतना ही अधिक वह मृत्यु से डरता तथा उसे भयंकर समझता है।

सुलोचना को हेमचन्द्र की अनेक बातें खटक जाती थीं। नित्यप्रति प्रेम की निन्दा उसे उपालम्भ-सी प्रतीत होती थी। साथ ही प्रातः नित्य विवाह

कर लेने की सम्मति कभी-कभी यहाँ तक सोचने को बाध्य कर देती थी—यह मुझे सच्चे हृदय से स्नेह नहीं करते। प्रेम में निराशा का अस्तित्व असम्भव है। प्रेम शाश्वत है। एक जीवन में न सही, कभी-न-कभी यदि वह सच्चा है, तो अवश्य प्राप्त होता है। प्रेम विश्वास का आत्मज है। फिर यह ऐसा क्यों कहते-सोचते हैं—किन्तु वह हठात् एवं बलात् ऐसे तर्कों को मानस से निकल देती थी। सोचती, बायरन ने कहा है कि प्रेम पुरुष के जीवन का केवल एक अंग मात्र है, किन्तु नारी के जीवन का तो वह सर्वस्व ही है। शायद कुछ ऐसा ही हो!

इसी बीच उसे हेमचन्द्र का हृदय-वेधी पत्र मिला। मनुष्य स्वतः जिस दोष को स्वीकार कर लेता है, उसी को दूसरे के द्वारा आरोपण पर अस्वीकार कर देता है। हेमचन्द्र ने सुलोचना को अनेक बाधाओं तथा कष्टों का मूल बताया था। यहाँ तक लिख बैठा था—मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहने की सोच रहा हूँ। तुम आकाश-कुसुम हो। उड़ान भी भरूँ, तो व्यर्थ है। अन्ततोगत्वा, निवेदन है कि हृदय पर पत्थर रखकर तुम मुझे भुलाने का प्रयत्न करो। कुछ दिनों बाद भूल जाओगी। इसी मे हमारा कल्याण है।

इस पत्र ने सुलोचना का हृदय विदीर्ण कर दिया। मनु, नल और राम की स्मृति हो आई। वह हतप्रभ तथा खोई-सी रहने लगी। सोचती—जो व्यक्ति अभी से इतनी भावना-शून्य तथा कायरतापूर्ण बातें करता है, वह संसार-सागर में जीवन-नौका कैसे खे सकेगा?

इसी बीच रणंजयनाथ आ गए। दो सप्ताह का अवकाश लेकर आए थे। सुलोचना अब दिन-भर घर में ही रहती थी। रणजयनाथ अबकी विशेष स्निग्ध होकर आए थे। सुलोचना को हँसाने और प्रसन्न रखने की हरचन्द कोशिश करते। सुलोचना अप्रभावित न रह सकी। एक दिन सुलोचना का सिर दर्द करने लगा। उन्होंने स्वयं अपने हाथों मालिश की। सुलोचना ने रोका—अरे, आप यह क्या कर रहे हैं? रहने दीजिए।

रणंजयनाथ—क्यों? तुम्हारा दर्द मेरा दर्द है। रोको नहीं, हृदय दुखेगा। सुलोचना, यदि तुम मेरा हृदय देख पातीं। वह आगे और कुछ न कह सके।

सुलोचना कुछ न बोली। उसने रोका भी नही। शरीर की विचित्र स्थिति थी। रणंजयनाथ आधी रात तक सिर मलते रहे। सुलोचना का दर्द दूर होने के घंटो बाद तक। बोले—यह मेरा सौभाग्य है। यदि यह अवसर जीवन

में सदा मिल सका, तो धन्य हो जाऊँगा, नहीं तो यह स्मरण ही पर्याप्त मान लूँगा।

सुलोचना के नत्र डबडबा आए। रणंजयनाथ ने देख लिया। सुलोचना ने समझा, नहीं देख पाए। उसने बड़ी सावधानी और शीघ्रता से अपनी स्थिति सम्हाली। रणंजयनाथ ने सर दिग्विजियनाथ के आने पर ही सिर मलना बन्द किया। सुलोचना रणंजयनाथ के बारे में ही सोचती रही।

सुलोचना की कोठी पूरा महल थी। घेरे में एक बडा उद्यान भी था। निकट की नहर से उसमें जल आता था। उसके बीच में एक सुन्दर तालाब था, जिसमें प्राय: नौका-विहार होता था। सुलोचना का प्रिय स्थान उद्यान के दक्षिणवर्ती कोने में था। वहॉ वह दोपहर मे कभी-कभी बैठती थी। आमों का झुरमुट, किनारे-किनारे बम्बा, कोयल की कूक तथा शीतल पवन के अतिरिक्त खिड़की से पथ के आने-जाने वालों को भी वह चुपचाप देखा करती थी। हेमचन्द्र यह जानता था। कभी-कभी उसका मन करता कि उसी खिड़की के निकट खड़ा होकर सुलोचना को देख आए।

हेमचन्द्र को पत्र पर बडा पश्चात्ताप हुआ। अपनी मूर्खता पर पछताया। किन्तु लज्जा और भय के कारण कर ही क्या सकता था? मन में आया, पत्र लिखे, किन्तु भय था कि पत्र कहीं दिग्विजयनाथ के हाथों में न पहुँच जाय। वह पत्र तो उसने स्वयं सुलोचना को राजपुर में पढ़ने की शर्त पर दिया था। फिर, उस पत्र की बात और ही थी। उसने महसूस किया कि सुलोचना के बिना वह जीवन में सुखी नहीं रह सकता। किन्तु विवश और निरुपाय था। इतना सब होते हुए भी कुछ दिन बाद वह अपने को न रोक सका। खिड़की की बात ज्ञात थी, दुपहरी में जाकर सुलोचना को देख-भर आने का निश्चय किया।

सुलोचना अब भी खोई-सी रहती थी। दोपहर काटे न कटती। झुरमुट के नीचे बैठी गाया या सोचा करती। सूर के 'प्रीति करि काहू सुख न लह्यौ''-पद की मार्मिक मीमांसा कर रही रही थी। रणंजयनाथ आ गए। बोले-यदि आज्ञा हो तो मैं भी बैठ जाऊँ?

सुलोचना-आपने इस प्रकार से लज्जित करना कब से सीखा है? सिपाही है न...।

रणंजयनाथ-प्रेम के क्षेत्र में शारीरिक शक्ति का विशेष महत्त्व नहीं

है यूराप का रावण हिटलर तक अपनी प्रिया ईवा ब्रौन से आज्ञा लेकर उसके कक्ष मे प्रवेश करता था। नेपोलियन भी प्रेमिका के लिए एक मोहक व्यक्तित्व बन जाता था, वर्षो बड़ी प्रेमिका! नीरस औरंगजेब स्नेह पाकर औरंगाबाद का ताजमहल बनवा गया है। सुलोचना चुप थी, मस्तिष्क में ऊहापोह कर रही थी कि यह अंश उसने कहाँ पढ़ा था, तभी रणंजयनाथ बोले—सच कहता हूँ, यदि जीवन में मुझे किसी से भय लगता है, तो तुमसे। डरता रहता हूँ, कहीं तुम्हारा जी न दुख जाय, कहीं तुम रूठ न जाओ।

सुलोचना—आप इतना ध्यान रखते है। मैं समझती थी, पद ने आपको रोबीला बना दिया होगा। अचरज है, आपका-सा कोमलहृदय व्यक्ति मैने नही देखा।

रणजयनाथ—यह मेरा सौभाग्य है कि आप मुझे बड़ाई दे रही हैं।

सुलोचना—मुझे 'तुम' 'आप' से अधिक प्यारा लगता है।

रणजयनाथ—अभी मैं 'तुम' कहने के ऊँचे और स्वर्गीय स्थान तक नहीं पहुँच पाया। देखिए, कोशिश कर रहा हूँ, शायद भगवान वहाँ भी पहुँचा दें।

सुलोचना—क्यों? 'तुम' भी तो कहते हैं?

रणंजयनाथ—सुलोचना, यदि तुम मेरा हृदय चीरकर देखो, तो आज से ही अपना अमूल्य स्नेह थोड़ा-बहुत अवश्य दे दोगी। काश, ऐसा हो पाता! वह रुक गए।

सुलोचना ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को भावुकतापूर्वक उनकी ओर मोड़ा। बोली—'तुम' ही कहिए।

रणंजयनाथ ने कहना प्रारम्भ किया—जीवन में केवल एक ही स्वप्न देखा, तुम्हें पाने का। मैं बलात् या हठात् तुम्हे नहीं पा सकता! किन्तु यदि मेरा हृदय सच्चा होगा, तो एक दिन भगवान स्वयं अपनी कृपा प्रदान करेंगे। यही विश्वास लिए, खोया-सा काम में लगा रहता हूँ। तुम्हारे अतिरिक्त इस जीवन में किसी स्त्री की कल्पना नहीं करता। पिताजी बिगड़ते हैं, दूसरी जगह शादी करने को कहते हैं, लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ? प्रेम के आँखें होती हैं, कान नहीं होते!.....मारे डर के घर नहीं जाता।

सुलोचना—मेरे कारण आपको इतना दु:ख है, मैं न जानती थी। मान लीजिए, मैं आपको प्रणय दूँ, किन्तु प्यार नहीं, तो क्या आप सन्तुष्ट रहेंगे?

अभी यही स्थिति है, आगे की समय जाने!

रणंजयनाथ–सन्तुष्ट तो मैं तुम्हारे हाथ से दिये गये विष से भी रहूँगा, क्योंकि वह विष भी मेरे लिये अमृत होगा। प्रणय तो बड़ी चीज़ है। मैं तो पहले ही कह चुका कि यदि मेरा प्रेम सच्चा होगा तो वह तुम्हारे प्रेम को भी खींच लाएगा।....मानता हूँ, प्रेम एक बार ही होता है, पर हेमचन्द्र का प्रेम प्रेम नहीं है। कॉलेज में आज की प्रसिद्ध कवयित्री और तब की सुन्दर छात्रा प्रेमलता से उसका ऐसा ही प्रेम हुआ। किन्तु उसने उसे बीच-धार में ले जाकर डुबो दिया। ठुकरा दिया। उसका केवल एक वाक्य ही–'मैं आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा, तुम मृग-मरीचिका में मत भटको'-बेचारी के लिए घातक बन गया। आज वह क्षय में घुल रही है। तुम भी गीत पढ़ती हो, जानती हो, कितनी वेदना को लेकर उसका उद्‌गार प्रकट होता है? क्या हेमचन्द्र ने किसी क्षण उस पर एक भी आँसू बहाया है? आज भी यदि उस अलौकिक प्रतिभा-सम्पन्न, अद्वितीय सुन्दरी को हेमचन्द्र के एक वक्तव्य की भी अमृत बूँद मिल जाये, तो वह लहलहा उठे किन्तु हेमचन्द्र कभी झाँका तक नहीं। वह भी मानिनी है। मृत्यु का आलिंगन करने जा रही है। ....अतः तुम्हारा प्रेम एकपक्षीय है। एकपक्षीय प्रेम विषाद का कारण बन सकता है, उल्लास का नहीं।

सुलोचना आँखें फाड़े यह गाथा सुन रही थी। रणंजयनाथ कहते जा रहे थे–तुम नाहक ही मौत से क्यों खेल रही हो? मैं अपने स्वार्थ-मात्र के लिए यह सब नहीं कह रहा हूँ। हेमू मेरा सहपाठी रहा है, मैं उससे खूब परिचित हूँ। वह विद्वान, प्रतिभासम्पन्न, देशभक्त और योग्य है, किन्तु उसमें दृढ़ता का अभाव है। वह ब्रह्मचर्य का राग अलापता है, किन्तु सौन्दर्य पर मुग्ध भी होता है। उसे इसकी चिन्ता नहीं कि उसका खेल दूसरे की मृत्यु बन सकता है। वह मँझधार में छोड़ देता है। देखना, तुम्हें भी पछताना पड़ेगा। ओह, इस खिड़की से हवा कितनी आ रही है। तुम्हें बुरी तो नहीं लगती? बन्द कर दूँ?

सुलोचना धीरे से बोली–रहने दीजिए, मुझे भी अच्छी लग रही है।

रणंजयनाथ–मैं जानता हूँ, तुम हेमचन्द्र से प्रेम करती हो। वह प्रेम का पात्र न हो, ऐसा भी नहीं है। किन्तु वह तो ब्रह्मचर्य पालन की घोषणा करता है। देखना, कुछ दिन बाद, यदि तुम उससे दूर रहो तो, वह विचित्र ब्रह्मचारी

कहीं दूसरा नीड़ खोज लेगा। नीड़-परिवर्तन उसकी प्रकृति है। इग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ के लिए प्रसिद्ध है कि वे योग्य पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट करने में अपूर्व रस का अनुभव करती थीं किन्तु इस आकर्षण का कोई परिणाम उन्हें रुचिकार न लगता था। सारा यूरोप देखता रहा और वे कुँआरी ही मर गईं। बेचारा सर वाल्टर रेले केवल इसलिए कारागार की कठोर यातनाएँ भुगतने और मरने का अधिकारी हो गया कि उसने बिना उनकी आज्ञा के विवाह कर लिया। .हेमचन्द्र 'पुरुष-ऐलिजाबेथ' है। नीड परिवर्तन को क्या तुम प्रेम कह सकती हो? फिर, क्यों नहीं अभी से सचेत हो जातीं? मेरी परीक्षाएँ जब तक मन हो, लेती रहो, किन्तु आश्वस्त ता कर दो। अभी यह घाव भर जाएगा, बाद में क्या होगा, मैं नहीं कह सकता। प्रेमलता से एक दिन मिल आओ। आजकल बम्बई में इलाज कराया जा रहा है। घरवाले जबरन ले गए हैं। वह तो जाती ही न थी। बताओ, मैं आशा. ....

सुलोचना--आप मुझसे शुद्ध....।

रणंजयनाथ--इसे मैं न कहूँगा।... मैं वासना का कीटाणु नहीं। धन की मुझे कमी नहीं, बहुत बड़ा इलाका है। स्त्री जो कुछ भी चाहती-रूप, शक्ति, पद, प्रतिष्ठा, सम्पत्ति सब कुछ मेरे पास बहुत-सा है। चाहता तो सैकडों तितलियाँ पाल लेता। किन्तु मुझे ससार में कुछ करना है।

सुलोचना-मैंने विवाह न करने का प्रण किया है।

रणंजयनाथ चौंक से गए, किन्तु धैर्य से बोले-क्यों?

सुलोचना-विवाह और वासना.....।

रणंजयनाथ-वासना से घबराती हो न, विवाह से नहीं? चलो, मैं भी प्रण किए ले रहा हूँ कि मैं विवाह वासना के लिए न करूँगा। सब-कुछ तुम्हारी इच्छा पर निर्भर रहेगा। मैं भी ब्रह्मचारी रहा हूँ, तुम जाँच कर सकती हो। किन्तु मैं हेमू जैसा ब्रह्मचारी नहीं रहा। जिस समय मैंने गज्जा डाकू को पकड़ा था, प्रान्त के तत्कालीन पुलिस इंस्पेक्टर जनरल दूरबीन से दूर से देख रहे थे। इनाम खुद गवर्नर ने दिया था....

सुलोचना-यदि आप जैसा कह गए हैं, वैसा सत्य है, तो मै क्या करूँ? वह लाल हो गई।

रणजयनाथ-बोलो, निराश न करो।

सुलोचना–सब कह–सुन तो चुकी। देखिए, पत्तियाँ खरक क्यों रही हैं?

रणंजयनाथ ने इधर–उधर ध्यान दिया, फिर खिड़की से झाँक कर देखा। बोले–कुछ नहीं है।

सुलोचना–अच्छा।

रणंजयनाथ–तो मैं आश्वस्त रहूँ?

सुलोचना–और मैं भी?

रणंजयनाथ–मैं तो जो कहना था, कह चुका। तुम बोलो ..

सुलोचना ने आँखें झुकाकर, लाल होते हुए उत्तर दिया– तो मैं भी कह ही चुकी। देखिए, पत्तियाँ....।

रणंजय खिडकी के निकट थे। देखकर बोले–कोई आदमी जा रहा है। मोड पर निकल गया है।

बेकारी और गरीबी जीवन में साथ–साथ होने पर कोढ़ पर खाज का काम करती हैं। हेमचन्द्र निर्धन तो था ही, बेकार भी हो गया। इधर जो कुछ भभूत थी, वह मुकदमेबाजी चाट गई। रही–सही प्रतिष्ठा को बाबूलाल ने हड़प लिया जो कुछ घर में था, समेट ले गए। जब तक सुलोचना आती रही, उसकी सहायता से काम चलता रहा। किन्तु हेमचन्द्र विवश होने के कारण ही सुलोचना की सहायता स्वीकार करता था। उसने भी पत्र के कारण आना बंद कर दिया। अब हेमचन्द्र की स्थिति विषम हो गई। खाने–पीने की कमी पड़ने लगी। खेत होते, तो सवाई–ड्योढ़े पर कहीं से अनाज उधार भी ले लेता, देने की आशा तो होती। किन्तु अब तो फसल का आसरा भी न था। हताश होकर हेमचन्द्र ने अपना मकान गिरवी रख दिया। परन्तु शर्त यह थी कि दो कमरों का प्रयोग वह खुद करेगा। जिसके यहाँ मकान गिरवी रखा था, उनका नाम था रामाधार। ब्राह्मण थे। वह और उनकी पुत्री, यही उनका परिवार था। गल्ले का व्यापार करते थे। उनका घर छोटा था, इसलिए यह मकान लाभदायक अवश्य था। कुछ ब्याज अलग से मिलने का करार था।

फिलहाल हेमचन्द्र को पाँच-सौ रुपए मिल गए।

किन्तु हेमचन्द्र का सिद्धान्त 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' से सम्बद्ध नहीं था। उसे बुजुर्गों की देहली के गौरव का भान था। अतः घर-बाहर काम तलाश किया करता। भाग्यवश काम मिल भी गया। राजपुर मे एक अंग्रेज ने शक्कर का मिल खोला था। उसी मे क्लर्क का काम मिला। वेतन डेढ़-सौ था। अंग्रेज सज्जन का नाम पीटर्सन था। उन्हें हेमचन्द्र से बातचीत करके सन्तोष हुआ। वह उस समय राजपुर आए थे, वैसे कलकत्ता मे रहते थे। एक हिन्दुस्तानी ईसाई मिस्टर रॉबिंस कम्पनी के मैनेजर थे। फिलहाल हेमचन्द्र का संकट टला। वह काम करने लगा। उसने रामाधार के रुपये भी दे दिए। किन्तु रामाधार गिडगिड़ाकर बोले—बेटा, पड़ा रहने दो मुझे भी। तुम्हारे कौन बैठा है? कुछ किराया चाहो तो, ले लेना। बिटिया रोटी-पानी बना देगी। जब जी चाहे, हटा देना। जगह की कमी है। आदि।

हेमचन्द्र ने लिखा-पढ़ी कराके रामाधार को रहने दिया। भोजन का स्वार्थ भी इस परमार्थ में निहित था। प्रातः स्वार्थ-परमार्थ साथ-साथ ही चलते है। परमार्थ स्वयं सबसे बड़ा स्वार्थ है।

रामाधार की पुत्री षोडशी थी। नाम था राजपती। घर की सम्पन्न और परिश्रमशीला होने के कारण उसे देखकर 'निज गृह सचित स्वास्थ्य उमगि आनन पर दमकत' का ध्यान हो आता था। शरीर का गुलाबी रंग, लाल लज्जालु मुख और बड़ी-बडी अभिव्यक्तिपूर्ण आँखें उसके साँचे में ढले शरीर को एक अतीन्द्रिय रहस्य बनाए थीं। रामाधार के यहाँ रहने का एक कारण हेमचन्द्र का अविवाहित होना था। हेमचन्द्र बड़ी मर्यादा वाला ब्राह्मण था, विद्वान था। रामाधार बाहर से आकर मनोहरपुर में बसे थे, सम्पन्न थे। किन्तु जब से रामाधार आए थे, हेमचन्द्र को अवकाश ही न मिला था कि वह ध्यानपूर्वक राजपती को देखे। सबेरे चला जाता, शाम को आता। थका-मॉदा भोजन करके सो जाता। रामाधार व्यापार के सिलसिले में बाहर भी चले जाते थे। वह हेमचन्द्र पर विश्वास रखते थे।

बड़े दिनों की लम्बी छुट्टी में हेमचन्द्र को अवकाश मिला। उसे अब पेट की चिन्ता न थी, अतः प्रसन्न तथा स्वस्थ प्रतीत होता था। हाँ, विशृंखलता अवश्य विद्यमान रहती थी। सुलोचना को भूल न पाया था। भुलाने की चेष्टा में रहता था। पर साफल्य कहाँ? एकान्त के क्षण विरह को

अधिक तीव्र बना देते हैं।

हेमचन्द्र कोई मार्मिक गीत गा रहा था। विह्वल और विस्मृत होकर गाता और बीच-बीच में रुककर आँसू पोछ लेता। बड़ी देर तक गाता रहा। फिर सहसा रुक गया। थोड़ा-सा गर्दन मोड़कर देखा, पीछे राजपती खड़ी थी। उसकी आँखों में आँसू थे। हेमचन्द्र के ताकते ही वह चटपट भागने को मुड़ी। हेमचन्द्र के मुख से निकल पड़ा--रुको तो!

वह ठिठक गई। किन्तु मुँह मोडकर हेमचन्द्र की ओर न देख सकी। हेमचन्द्र ने कहा--यहाँ आओगी?

राजपती उसके निकट आकर खड़ी हो गई। उसका सारा चेहरा लाल था। हेमचन्द्र ने निकट से उसका पवित्र, ललित, स्वस्थ सौन्दर्य देखा, तो आत्मविस्मृत हो गया। कुछ देर बोल न सका। एकटक राजपती की ओर देखता रहा। राजपती ने भी बीच में लजाते हुए चुपके--से अपनी भोली आँखे उठाकर देखना चाहा, किन्तु हेमचन्द्र को अपनी ओर देखते देखकर उसकी लालिमा के पाटल पर सीकर-नीहार छा गए।

हेमचन्द्र ने कहा—बैठोगी?

राजपती ने इनकारी का सिर हिलाया। हेमचन्द्र बोला--क्यों, क्या गुस्सा हो?

राजपती ने इनकारी का सिर हिलाया। हेमचन्द्र के मुख से निकल पड़ा—मालूम पड़ता है, मुझसे रूठ गई हो? तभी तो बोलती नहीं हो।

राजपती ने कोई उत्तर न दिया। वह और लाल हो गई और उठकर भाग गई। हेमचन्द्र ने बुलाया, किन्तु वह न आई। रामाधार कहीं दूर की मण्डी में सरसों खरीदने गए थे। रात को न आ सकते थे। शाम हो गई। हेमचन्द्र पड़े-पड़े राजपती के विषय में सोचता रहा। इतने में ही मीठी ग्राम्यभाषा मे सुन पडा—तुम आज घूमने न जाना, मुझे डर लगता है। मैं खीर बनाऊँगी।

हेमचन्द्र को वाणी का पीयूष मिला। किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। मुख से शब्द निकले—लालच देकर... ।

राजपती—लालच नहीं देती, सचमुच बनाऊँगी और तुम्हें भी दूँगी।

हेमचन्द्र—मैं खा पाऊँगा?

राजपती—क्यों, खा क्यो न पाओग?

हेमचन्द्र–बहुत मीठी होगी।

राजपती–मै शक्कर थोड़ी ही डालूँगी। अब तो राजी होगे?

हेमचन्द्र–तुम्हारी शक्कर न पड़ने पर भी वह इतनी मीठी होगी कि मैं गायद खा न पाऊँ।

राजपती–खा पाओगे। खाना पड़ेगा।

हेमचन्द्र अपने को भूल गया। बोला–जब आज्ञा ही है, तब तो इनकारी पर दण्ड मिल सकता है। अच्छा, मैं भी बनवाऊँगा।

राजपती–नहीं, मैं बनाऊँगी।

हेमचन्द्र–क्यों? मेरी भी बात मान लो न.....!

राजपती–तुम बडे हो। कैसे बनाने दूँगी? उचित बात मानी जाती है, अनुचित नहीं।

हेमचन्द्र निरुत्तर हो गया। राजपती कुछ क्षण बाद बोली–क्या गुस्सा हो गए?

हेमचन्द्र अपने कमरे से निकलकर जहाँ राजपती चावल बीन रही थी, वहाँ खड़ा हो गया। बोला–भला बताओ, ससार में तुमसे कोई गुस्सा भी हो सकता है? तुम गुस्सा होने लायक हो?

राजपती अब की कुछ न बोल सकी। हेमचन्द्र को मौका मिला–लो, मालूम पड़ता है तुम रूठ गईं?

राजपती के मुख पर हल्का-सा स्पन्द हुआ, किन्तु वह कुछ बोल न सकी। उनके नेत्र धीरे-धीरे, मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। होठों पर एक हल्की-सी लकीर खिंची थी। उसने केवल सिर हिलाकर नकारात्मक उत्तर दे दिया।

और मुग्ध हेमचन्द्र लज्जा, सौन्दर्य तथा मीठेपन की उस प्रतिमा को आदर और अनुराग भरी ऑखों में निहारता रहा।

सर दिग्विजयनाथ अवसर चूकने वाले व्यक्ति न थे। रणंजय नाथ ने ज
उनको बताया कि सुलोचना की स्थिति अनुकूल है, तो वे फूले न समाये

तुरन्त सुलोचना के पास चले। सुलोचना रणजयनाथ से बातें करके अपने कक्ष में गयी। उसके मस्तिष्क में हेमचन्द्र के प्रति अनुराग तथा श्रद्धा के भाव अब ध्वस्तप्राय हो गये थे। उसने मेज के ड्रॉअर से हेमचन्द्र का पत्र निकाला। उसे पहले ऐसा मालूम हुआ, जैसा पत्र किसी ने खोला है। किन्तु सभी चीजें यथास्थान ठीक-ठाक रखी थीं। इतने में ही दिग्विजयनाथ ने कमरे में प्रवेश किया। बोले—बेटी, तबीयत कैसी है?

सुलोचना—क्यों, क्या मै बीमार थी?

दिग्विजयनाथ—तेरी तबीयत आजकल कुछ खराब-सी रहती है। मै सदा चिन्तित रहता हूँ कि कहीं कोई बडा रोग न हो जाये। अधिक मनन या चिन्तन-स्मरण स्वास्थ के लिए सबसे घातक रोग होते हैं।

सुलोचना—मैं तो स्वस्थ हूँ, मेरा स्वास्थ्य बुरा नहीं।

दिग्विजयनाथ कुछ देर इधर-उधर की बातें करते रहे। फिर मौका पाकर बोले—तो बेटी, शादी के सम्बन्ध में तेरी क्या.....?

सुलोचना—क्या मैं भार हूँ? जब देखो, शादी-शादी की रट लगाये रहते हैं।

दिग्विजयनाथ—मैंने यों ही पूछा। यदि तेरे पास माता या पिता का हृदय होता, तो तू इस तरह न खीझती।

सुलोचना—शादी की कौन-सी जल्दी पड़ी है। जीवन बिना शादी के भी कट सकता है।

दिग्विजयनाथ—मैं इसी जेठ-आषाढ में....।

सुलोचना—आगे देखा जायेगा। आषाढ में तो शत्रु को भी घर से नहीं निकाला जाता।

दिग्विजयनाथ जानते थे कि हठ करने से मामला बिगड़ जायेगा। अतः बोले—अच्छा, वसन्त में ठीक रहेगा?

सुलोचना ने उसका उत्तर नहीं दिया। दिग्विजयनाथ गद्‌गद होते हुए चले गये।

इसके बाद रणंजयनाथ का आगमन और भी बढ़ने लगा। वह नाना प्रकार के उपहार लाते। सुलोचना के व्यवहार में भी कोमलता बढ़ गई। किन्तु हृदय व्यवधान-रहित न था। अब भी अवकाश के क्षणों में हेमचन्द्र के विषय में सोचा करती। भयंकर रात्रि में प्राण बचाने वाले हेमचन्द्र से

लेकर प्रेमलता के प्राण लेने वाले हमचन्द्र तक के चित्र उसके मानस-पटल पर अंकित होते रहते। पहले निश्चय किया कि कभी हेमचन्द्र के सामने न जायेगी, घर जाना तो दूर रहा किन्तु दो महीने में जो शारीरिक तथा मानसिक व्याघात हुए, उन्होंने विवश कर दिया। एक दिन दोपहर में मनोहरपुर चल ही पडी।

चलने के पूर्व और मार्ग मे सुलोचना ने कल्पनाएं कीं कि हेमचन्द्र उसे देखते ही रो पड़ेगा। मुख से वाणी न फूट सकेगी, कुछ देर रुककर अपनी कठोरता पर पश्चात्ताप करेगा, और वह हारकर भी मान-सा करती हुई जीत जायेगी। कहेगी-कोई बात नही। आप पुरुष है, भावुक है, कवि हैं। आप से कठोरता हो ही नहीं सकती। परिस्थितियाँ मनुष्य को विकल कर देती हें। यह भी सोचा कि वह हेमचन्द्र को प्रसन्न कर देगी। वह सूख गया होगा, उसे देखते ही हरा हो उठेगा।

यही सब सोचते-सोचते मनोहरपुर आ पहुँची। कार कुछ दूर रोकी। हेमचन्द्र ने घर की ओर चली। दोपहर का सन्नाटा था। घर का दरवाजा बन्द मिला। उसने कुछ शब्द सुने। ध्यान दिया, अन्दर से आ रहे थे। दराज मे से झॉककर देखा। दालान में एक चटाई पर लेटा हेमचन्द्र उसी चटाई पर बैठी एक नितान्त सुन्दरी किशोरी से कह रहा है-तो तुम प्यार करना भी जानती होगी, राजू?

सुलोचना का सिर चकरा गया। वह संज्ञाशून्य-सी हो गयी, किन्तु खड़ी-खड़ी सुनती रही। बीच-बीच में इधर-उधर देख भी लेती थी। दरार से झाँक कर अन्दर का दृश्य भी देखती जाती थी। राजू ने कई बार पूछे जाने पर इस प्रश्न का उत्तर दिया-तुम भी तो जानते होगे?

सुलोचना के मस्तिष्क में रणजयनाथ की बात चक्कर काट रही थी, हृदय में क्रोध की धारा बह रही थी और शरीर से पसीना छूट रहा था। उसने सुना-जानता हूँ। क्या प्यार देती भी हो?

राजपती ने इस प्रश्न का भी उत्तर न दिया। सुलोचना ने इस अवकाश में राजपती का रूप, रंग देखा, तो दंग रह गई। हेमचन्द्र बोला-नहीं देती क्या?

राजपती के पसीना निकल आया, फिर भी वह कुछ न बोली। हेमचन्द्र अचानक उठा और राजपती का एक हाथ पकड़कर बोला-बोलो, क्या....?

राजपती के अस्फुट शब्द सुनाई पड़े—तुम देते हो? और वह लजाकर घूम गई।

सुलोचना के मानस-चक्षुओं में प्रेमलता का कल्पना-चित्र अंकित हो गया है। वह अधिक न रुक सकी। काँपते डगों कार तक आई और सीधे राजपुर पहुँची। उसने निश्चित किया कि अब कभी हेमचन्द्र से बात तक न करेगी, उसके विषय में कुछ सोचेगी भी नहीं।

□□□

रणंजयनाथ से दिग्विजयनाथ ने बताया कि आगामी वसन्त में विवाह हो जायेगा। मैं तो आषाढ़ में चाहता था, पर मानती ही नहीं है। रणंजयनाथ ने कहा कि आषाढ में ही हो जायेगा। दिग्विजयनाथ की बाँछे खिल गईं। बोले—मैं कृतज्ञ रहूँगा।

रणंजयनाथ जानते थे कि वसन्त तक परिस्थितियो में न जाने क्या अन्तर हो जाय। अतः वह व्यग्रता को छिपाए सुलोचना के पास आये। सुलोचना दोपहर में जब से मनोहरपुर से लौटी थी, औंधी पड़ी थी। चेहरा उदास था। रणंजयनाथ ने आकर विनम्रतापूर्वक कहा—कहो, क्या सिर में दर्द है? उन्होंने सिर सहलाना शुरू कर दिया।

सुलोचना ने विभोर हाकर कहा—नहीं तो, आप कब आये? यह रहने दीजिए। पर उसे इसमें बुरा न लग रहा था, और उससे भी अधिक इसे रणंजयनाथ समझ रहे थे।

रणजयनाथ—अभी आ रहा हूँ। न जाने क्यों तुम्हे बिना देखे...। चुप हो गए।

सुलोचना के मुख पर लाज की रेखाएँ लाली में डूबकर तिरोहित हो गई। रणंजय बोले—किन्तु अभी भगवान की कृपा-दृष्टि....।

सुलोचना—आप व्यंग्य न किया करिए। यह आप कैसे कह रहे हैं?

रणंजयनाथ मुस्कराते हुए बोले—तो कब तक भक्त की इच्छा-पूर्ति होगी?

सुलोचना—मैं क्या कह सकती हूँ? वह चुप हो गई।

रणंजयनाथ खिल गए, कुछ देर रुकने के बाद दिग्विजयनाथ से जाकर बोले—आप पूछ आइए।....लेकिन कल मेरे जाने के बाद पूछना ठीक रहेगा।

दिग्विजयनाथ ने दूसरे दिन समय को अनुकूल समझकर सुलोचना से पूछा मेरी इच्छा तो ज्येष्ठ में ही विवाह करने की थी। तू तो मेरी आत्मा को..।

सुलोचना ने धीरे-से कहा—अगर आपको मुझे ब्याहना ही है, तो क्या ज्येष्ठ क्या आषाढ, क्या वर्षा, क्या वसंत। जब मन हो, जो इच्छा हो, कीजिए। मेरी इच्छा न थी, पर मैं आपका विरोध भी नहीं कर सकती। मै भार हूँ, आप भार-मुक्त होइए।

दिग्विजयनाथ खिल उठे। आन्तरिक उल्लास को छिपाते हुए सकरुण वाणी में बोले—बेटी, लोक-मर्यादा का पालन करना पडता है, नही तो मेरे हृदय का टुकड़ा ही क्या मुझे भार हो सकता है? तुम्हारी स्वीकृति के बिना मै कुछ नहीं कर सकता था। बेटी! मैं कुछ अवसरों पर तुम्हारें, ऊपर बिगड़ा, सम्भव है, कुछ अनुचित कह गया होऊँ, उसका मुझे हार्दिक खेद है। पिता-माता अपनी सन्तान को भावावेश मे बहते या गलत रास्ते पर चलते देखकर कभी-कभी स्वयं भी भावावेश मे बह जाते हैं, गलत रास्ते पर चल पडते हैं। कुछ रुककर बोले-बेटी, तो मैं तैयारी करूँ?

सुलोचना ने कुछ उत्तर न दिया। दिग्विजयनाथ प्रसन्न-हृदय चले गये। उन्हे बड़ा सन्तोष मिला। साथ ही, रणंजयनाथ के जादू-भरे व्यक्तित्व का स्मरण करके वह आनन्दित हो उठे। उसी दिन से समारोह और उत्सव की तैयारियाँ होने लगीं। एकमात्र सन्तान के विवाह में राजा साहब तन-मन-धन से खर्च करने को प्रस्तुत थे। अत: बड़े-बड़े आयोजन होने लगे।

हेमचन्द्र को जब सुलोचना के विवाह का समाचार ज्ञात हुआ तो, उसे गहरा किन्तु अज्ञात-सा सदमा पहुँचा। उसने सोचा—प्रेम का नाटक ही तो था।....फिर भी, सुलोचना ने यह नाटक कितनी कृत्रिमता से खेला था! पुरुष भोला होता है, नारी चतुर; पुरुष मुग्ध हो जाता है, नारी आकर्षित करके बीच-धारा मे छोड़ देती है। कितना आडम्बर दिखलाती थी? खैर, मैं भी प्रतिकार करूँगा। मै मानस को व्यथा देकर भी सुलोचना को भुलाने की चेष्टा करूँगा। मेरी बातें कैसे काटती थी? सचमुच आदर्शवादी ही आदर्श मे सर्वाधिक च्युत होता है। प्रेम वासना की सन्तान है। प्रेम को वासना से पृथक नहीं रखा जा सकता।...वह कितनी आडम्बरपूर्ण दलीलें देती थी?

यही सब सोचते-सोचते वह घर आया। हृदय में एक टीस-सी उठ रही थी। न भूख थी, न प्यास। घर आते ही विचार-सागर में कंकड़-सा

पड़ा–"बडी देर लगा दी? चलो, खालो।"

राजपती के शब्दों में हेमचन्द्र को आज अप्रत्याशित अपनत्व तथा स्निग्धता का आभास मिला। उसे अन्तस्तल के रस की फुहार का उल्लास प्राप्त हुआ। प्रेम में विश्वास का नीड़ होता है।

राजपती हेमचन्द्र के कुछ न बोलने पर जरा जोर से बोली–क्या रूठ गए हो? न जाने क्यों, मुझे तुम्हारे रूठने का भय बना रहता है? लेकिन मैं जानती हूँ कि तुम रूठ नहीं सकते। चलो, मैं भूखी हूँ। वह चुप हो गई।

हेमचन्द्र–क्यों? क्या तुम बिना मेरे खाये भोजन नहीं करतीं?

राजपती ने कुछ उत्तर न दिया, हेमचन्द्र को अवसर मिला–मालूम पडता है, रूठने का बदला लिया जा रहा है, किन्तु मुझे भी विश्वास है कि तुम रूठ नहीं सकतीं।

राजपती ने अपने बड़े-बड़े नेत्र उठाकर हेमचन्द्र की आँखों में डाल दिये उनमें कुछ ऐसा भोलापन भरा था कि हेमचन्द्र स्थिर न रह सका। राजपती का हाथ पकड़कर बोला–इतने दिनों से तुम्हारे साथ रह रहा हूँ, बोलो, क्या कुछ प्यार भी दे सकी हो?

राजपती का सारा शरीर स्वेदयुक्त हो गया, धीरे-से हाथ छुडाकर वह मुड गयी। हेमचन्द्र ने दुहराया–न बोलोगी? बोल दो, यह मेरे जीवन और मरण का प्रश्न है। राजपती के आँसू अब न रुक सके, अस्फुट वाणी श्रुतिगोचर हुई–यह तुम अपने से पूछो, मुझ से नहीं।

हेमचन्द्र आत्म-विस्मृत हो गया, बोला–मैं तो तुम्हें चाहता हूँ। किन्तु तुम्हारे योग्य मैं हूँ ही नहीं...।

राजपती ने रोका–ऐसा उल्टा कथन न करो, मुझे कष्ट मत दो। तुम मुझे...।

हेमचन्द्र ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर दबाते हुए कहा–नही, अब मैं तुम्हें न खोऊँगा। तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा!

□□□

स्वरूपनारायण शास्त्री ने अथक परिश्रम और कूटनीति की सहायता से

मृतप्राय मनोहरपुर इण्टर-कालेज को बचा लिया। इधर उनकी बड़ी बदनामी हुई थी, शिक्षा-विक्रेता के रूप में पर्याप्त शोहरत हो गई थी। उन्हें स्वय बाहर निकलने में लज्जा का अनुभव होने लगा था। इसकी जड़ में वही अभागा हेमचन्द्र था, जिसे शास्त्रीजी खूब मजा चखा चुके थे। दिग्विजयनाथ को उन्होंने ही भडकाया था। हेमचन्द्र का सर्वस्व लेने की चेष्टा शास्त्रीजी सदैव करते रहे। अन्ततः वह प्राण न ले सके। किन्तु जब उन्होंने देखा कि हेमचन्द्र मिल में काम करने लगा है और विद्यालय के खिलाफ कुछ भी नहीं कर रहा है, तो उन्हें सन्तोष हुआ।

पंकजजी का रुतबा और रौब इधर खूब बढ़ रहा था। शास्त्रीजी की उन पर बड़ी कृपा थी। पंकजजी ने सलाह दी—आपके से प्रांत-विख्यात शिक्षाविद् तथा समाज-सेवक नेता के कार्यो का सम्यक् एवं सचित्र प्रकाशन करने के लिए एक समाचारपत्र का होना...।

शास्त्रीजी ने पान चबाते हुए उत्तर दिया—मैं निस्पृह तथा निस्वार्थ सेवा का पक्षपाती हूँ और लोकमान्य....।

पंकजजी—सो तो ठीक है, और मैं आपको आज से नहीं जानता। फिर भी आज-कल प्रकाशन और प्रचार का युग है। युग-धारा को परख कर चलना ही नीति है।

शास्त्रीजी—मेरी इच्छा बहुत दिनों से एक समाचार-पत्र निकालने की थी। किन्तु मारे संकोच के साहस न कर पाता था। यदि आप कह रहे हैं तो एक दैनिक निकाला जाय। सम्पादक आप हैं ही, बिक्री का प्रबन्ध मैं करा दूँगा। आशा है कुछ ही दिनों में खूब लाभ होने लगेगा।

पंकजजी—सम्पादक मैं....।

शास्त्रीजी—घबराइए नहीं, काम सब होता रहेगा। आपकी ख्याति बढ़ाना अब मेरा कर्तव्य हो गया है। जो काम आप उठायेंगे, वह पूरा होकर ही रहेगा, या यों कहिए, उसे पूरा होना ही पड़ेगा।

पकजजी—आपकी गवर्नर साहब के स्वागत वाली कविता की बड़ी चर्चा है।

शास्त्रीजी ने ऑखें झुकाते हुए उत्तर दिया—सब आपकी दया है। ऐसी दया कभी-कभी करते रहना. ।

पंकजजी—मैं तो आपका अनुचर हूँ। जो वस्तु आपसे ही मिली है, उसे

कुछ अशों में आपको ही देता हूँ, तो उसमें कृपा की कोई बात मैं तो नहीं देखता।

शास्त्रीजी गद्‌गद हो गए। बोले—अच्छा पंकजजी, अब नए प्रिंसिपल का वतन मुझ से नहीं झेला जा रहा है। इसे निकालना है। दलबन्दी बढ़ा रहा है। मैं तो चाहता हूँ इन दोनों से छुट्टी पाऊँ। कालीपद को तो मैं लखनऊ में लगवाए दे रहा हूँ। मैं बच जाऊँगा, ऊपर से कृतज्ञता का बोझ भी लाद दूँगा। रहे प्रिंसिपल साहब, उन्हें गबन के सिलसिले में ले लूँगा। सारा मैटर तैयार है। मैंने एकान्त में त्याग-पत्र देने के सम्बन्ध में समझाया साम-दान सभी से काम लिया, पर वह टस से मस न हुआ। हाँ, तो आप प्रिंसिपल के पद के लिए प्रस्तुत रहिएगा। विद्यालय अब जम चुका है, उखड़ नहीं सकता। गवर्नर, कलेक्टर और पुलिस इंस्पेक्टर जनरल सब अपने माफिक हैं। लम्बे वतन हटाकर अब मैं ठीक से व्यवस्था करने पर तुल गया हूँ। हाँ, तो आप प्रिंसिपल.....।

पंकजजी—मैं इस योग्य...।

शास्त्रीजी—योग्यता के सूत्र का संचालन तो मैं करूँगा। फिर आप योग्य हैं या नहीं, यह मैं जानता हूँ। अच्छा, तो ठीक है न?

पंकजजी ने सिर नीचा करके सलज्ज उत्तर दिया—जो आप आदेश देंगे, शिरोधार्य होगा।

शास्त्रीजी—आपकी रसीली कविताएँ छात्रों को मुग्ध किए हैं। आप प्रिंसिपल बनेंगे, सभी प्रसन्न होंगे। हाँ, हेमचन्द्र का क्या हाल है? बड़ा सिद्धान्तवादी बनता था। जमीन गई, प्रतिष्ठा गई, प्राण जाने से बचे, चिड़िया भी हाथ से निकल गई। अभी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग हुआ ही नहीं। क्या करता है आजकल?

पंकजजी—मिस्टर रॉबिंस वाले मिल में बाबूगीरी करता है। वहाँ भी नेता बनने की धुन में मैनेजमेन्ट से विरोध मोल ले चुका है। अब श्रमिक नेता बन रहा है। रॉबिंस कितना तिकड़मबाज है, वह आपको मालूम ही है।

शास्त्रीजी—अरे, वह तो मेरा चेला ही है। देखना ऐसा रगड़ेगा कि बेटा बचेंगे नहीं। अन्त में मैं गुलामी कराऊँगा।

पंकजजी—सुलोचना को पाने की ताक में था। 'चाहत बारिद बूँद गहि तुलसी उड़न अकास !' रणंजयनाथ से उसका विवाह हो गया। आजकल

विचित्र स्थिति म पड़ा है। लेकिन प्रसन्न रहता है। मुझे कल मिला था। कहता था. आगामी पखवाड़े में एक ग्रामीण किशोरी से विवाह करेगा। कुछ सनक-सा गया है। लेकिन शास्त्रजी, उसकी कविताएं निकम्मी होन पर भी न जान क्यो सम्मान पा रही हैं। साहित्य सम्मेलन ने इस वर्ष उसे पुरस्कृत किया है।

शास्त्रीजी–मेरे पत्र का उद्देश्य इस धूर्त कवि को ध्वस्त करना भी होगा। ऐसी-ऐसी आलोचनाएँ निकलवाऊँगा बड़े-बड़े धुरन्धर आचार्यों से एसे-ऐसे प्रहार कराऊँगा कि बेटा चित हो जाएँगे। आपकी कविता की आलोचकों ने क़द्र नहीं की। उसके प्रति न्याय होगा।

पंकजजी इसका क्या उत्तर देते? कुछ देर रुके। विविध विषयों पर बातचीत करने के बाद जब घर चले तो, हृदय में उल्लास समा न रहा था। प्रिंसिपल बनने की उमंग-कल्पना की हिलोरों में नाच रही थी। सम्पादक की मर्यादा का अनुमान करते वह जा ही रहे थे कि हेमचन्द्र मिल गया। पंकजजी ने उसे देखा। किन्तु नमस्कार करने की परेशानी के कारण मुँह घुमाकर चलने लगे। हेमचन्द्र ने ही टोका–नमस्कार पंकजजी, कहिए, कहाँ चले?

पंकजजी ने अधचौंके की स्थिति में मुड़कर देखा। बोले–ओह, आप हैं! कहिए, शादी कब है?

हेमचन्द्र–आगामी रविवार को! आपको भी निमन्त्रण है।

पंकजजी–शास्त्री आएंगे?

हेमचन्द्र–उन्हें तो निमंत्रण न दूँगा। आप कष्ट....।

पंकजजी–ओह, मुझे तो उस दिन सायं आगरा जाना है। अखिल प्रान्तीय कवि सम्मेलन....।

हेमचन्द्र–अच्छा, कोई बात नहीं। फिर कभी दर्शन हो जाएँगे।

यह कहकर वह अपने मार्ग पर चल पड़ा। पंकजजी को छुट्टी-सी मिली। अपने विचारो में लीन वह आगे बढ़े।

विवाह तो सुलोचना और हेमचन्द्र दोनों के हो गये, किन्तु हृदय में वह

उल्लास न आ सका, जो विवाह के पश्चात आता है। सुलोचना ने हेमचन्द्र को आमंत्रित कराया, किन्तु वह न पहुँच सका। हेमचन्द्र ने सुलोचना को आमंत्रित किया, किन्तु वह भी न पहुँच सकी। हेमचन्द्र ने सुलोचना के आचरण को 'धनिक सुलभ' कहकर मन को सन्तोष देने की असफल चेष्टा की, और सुलोचना ने हेमचन्द्र के आचरण को उसकी 'भ्रमरवृत्ति' का ज्वलन्त उदाहरण कहकर मन बहलाने का प्रयत्न किया। किन्तु दोनों के हृदय आलोड़ित-विलोड़ित बने रहे।

सुलोचना का चित्त उद्विग्न रहने लगा। जब रणंजयनाथ ने स्विट्ज़रलैण्ड चलने का प्रस्ताव किया, तो वह विनम्रतापूर्वक टाल गई। कश्मीर जाने को भी प्रस्तुत न हुई। रणंजयनाथ ने अधिक दबाव न डाला। वह चतुर थे। ढलता स्नेह भी व्यवधानों को पाकर तीव्र हो उठता है।

सुलोचना के हृदय में यह इच्छा अत्यन्त बलवती थी कि एक बार हेमचन्द्र से वार्तालाप कर ले। उसने योजना बना ली थी कि किस प्रकार मानपूर्वक मिलेगी, रूखेपन से प्रश्न करेगी, मीठे तैश के साथ उत्तर देगी और आँखों को आँखों में डालने से बचाए रखेगी। पहले न बोलेगी, किन्तु यदि कहीं हेमचन्द्र बोल बैठेगा तो घंटों ले लेगी। उसे पता चल गया था कि हेमचन्द्र मिल में काम करता है। काम की समाप्ति की बेला में टहलने के बहाने निकली। ड्यूटी में देर होने की अनिवार्य आशंका के कारण सवेर न गई थी। मिल का समय उसे ज्ञात था। कुछ पहले से ही एक छोटी उम्र के नौकर को लिए खिड़की के पीछे वाले खेतों में टहलने लगी। मनोहरपुर पहुँचने का निकट वाला पैदल का रास्ता उधर से ही होकर गुजरता था।

मिल का भोंपू बजा और धीरे-धीरे उधर से मजदूर गुजरने लगे। जिन्हें मनोहरपुर या निकटवर्ती गाँवों में जाना था, वे उधर से ही गुजरे, जिधर सुलोचना टहल रही थी। एकटक पंथ निहार रही थी। प्रतिक्षण आशा को लिए दृष्टि घूमती और निराश होकर भटकती हुई दौड़ा करती। आखिर उसे प्रतीत हुआ कि हेमचन्द्र आ रहा है। घुटनों के नीचे तक धोती और कुरता दूर से दिखाई दे रहा था। निकट आते हुए हेमचन्द्र को देखकर सुलोचना का हृदय एक विचित्र भाव से भर गया। हेमचन्द्र शरीर से आधा हो गया है। नीचा सिर किए वृद्धों की भाँति चल रहा है।

निकट आने पर हेमचन्द्र ने सुलोचना को देखा। सहसा देखने के कारण

कुछ विचार न कर सका। बोल ही तो पड़ा—मिसेज सुलोचना, नमस्कार!

सुलोचना इस वाक्य में छिपे भावोद्वेग तथा व्यंग्य की मीमांसा करती रही। केवल हाथ बाँधकर नमस्कार कर लिया। हेमचन्द्र ने कहा—क्षमा कीजिएगा, समय पर बधाई देने न....।

सुलोचना—यह क्षमा तो मुझे भी चाहिए।

हेमचन्द्र कुछ रुककर बोला—मिसेज सुलोचना-रणंजयनाथ, आप क्या अस्वस्थ रही हैं?

सुलोचना—नही तो, यही प्रश्न मैं आपसे करना चाहती थी।

हेमचन्द्र—मै भी बीमार नहीं रहा। किन्तु बेकार रहा। निर्धन व्यक्ति के लिए सबसे बड़ा रोग बेकारी है।

सुलोचना—दुलहिन के दर्शन करने का इरादा था। लेकिन मारे डर के आने का साहस न कर सकी।

हेमचन्द्र—मुझ निर्बल से आपको भय कैसा? भय यदि मुझे होता तो ठीक भी था।

सुलोचना—किन्तु जब होता तब तो?

हेमचन्द्र कुछ उत्तर न दे सका। सुलोचना ही बोली—जो भी हुआ, हो गया। एक प्रार्थना है, कहीं मुझे न भुला दीजिएगा।

हेमचन्द्र बोला—यही तो मेरे हृदय का भी उद्‌गार है।

सुलोचना को अब याद आया कि नौकर खड़ा है। कुछ संकुचित हुई। किन्त न तो उसे हटा ही सकी, न रुक ही सकी। बोली—मैं पुरुष की कृत्रिमता से नही, नारी की सहृदयता से कह रही हूँ।

हेमचन्द्र—पुरुष पर दोषारोपण ठीक नहीं है। अपनी ओर निहार कर ही दूसरे की ओर देखना चाहिए।

सुलोचना—क्यों? मैं अपनी ओर निहार चुकी हूँ!

हेमचन्द्र—विवाह आपका पहले हुआ या मेरा?

सुलोचना—पत्र आपका या मेरा? प्रेमलता की-सी अभागिनी मैं भी निकली। भावुकता मात्र से प्रभावित या प्रेरित प्रेम बालू की भीति की भाँति अस्थायी होता है। उसे परिस्थितियों की साधारण बौछार भी सरलापूर्वक ढहा देती है। अन्तस्तल से उद्‌भूत सच्चा प्रेम मृत्यु से भी दृढ़कर होता है, जो परिस्थितियों को बलात् अपने अनुकूल बना लेता है।

हमचन्द्र परिस्थितियो से मुझ से अधिक तो आप ही प्रभावित रही

सुलोचना—पत्र आपका आया, आदेश आपके मिले, राजपती से प्रेमालाप आपका हुआ, फिर भी परिस्थितियों से अधिक प्रभावित मैं ही हुई?

हेमचन्द्र—राजपती से परिचय के पहले ही आप रणंजयनाथ को आश्वस्त कर चुकी थीं। असफल प्रेम प्रतिशोध चाहता है। उस स्थिति में वह त्रुटि को भी अपना बैठता है।

सुलोचना—आपने पत्र क्यो लिखा था?

हेमचन्द्र—वह मेरी भूल थी। जीवन भर उसका प्रायश्चित्त करूँगा। किन्तु रणजयनाथ को आश्वासन....।

सुलोचना—वह मेरी भूल थी। मैं भी प्रायश्चित्त से नहीं बच पाऊँगी। किन्तु राजपती वाली घटनाएं. . .।

हेमचन्द्र—वे तो रणंजयनाथ वाली घटना की संतानें थी।

सुलोचना—और प्रेमलता?

हेमचन्द्र— आपकी प्रेमलता को मैं नहीं समझ सका। यह कौन हैं?

सुलोचना—किसी दिन मेरे विषय में भी यही कह दीजिएगा।

हेमचन्द्र—ऐसी बातें करना आपको किसने सिखाया है? खेद है, आप मेरे हृदय को न समझ सकीं। उसकी ऑखों में आँसू आ गये। उसने उन्हें पोंछा नहीं।

सुलोचना कुछ देर चुप रही। बोली—क्षमा कीजिएगा, मैं बम्बई में चिकित्सा कराने वाली और अभी हाल में दिवंगत होने वाली कवयित्री प्रेमलता ..।

हेमचन्द्र—मैंने उनका नाम सुना है। वे हैं या नहीं, मुझे ज्ञात न था। तो क्या... ?

सुलोचना—आपने उन्हें देखा तक नहीं?

हेमचन्द्र—क्या आपको भी सत्य का प्रमाणपत्र देना पड़ेगा? मैं सम्मेलनों में कभी जाता नहीं। कहाँ उन्हें देख लेता? मेरे घर वह क्यो आती? आप यह सब क्यों पूछ रही हैं?

सुलोचना का सिर घूमने लगा। वह कुछ उत्तर न दे सकी। हेमचन्द्र भी कुछ न समझ सका। फिर दुहराया—प्रेमलता से मेरे सम्बन्ध में प्रश्न कैसा बताइए तो?

सुलोचना कुछ देर बाद मुश्किल से केवल इतना कह पाई–फिर कभी बातचीत होगी। दया करते रहा कीजिए। मैं भी चलूँ,. .आपकी प्रतीक्षा हो रही होगी।

□□□

मिस्टर रॉबिस उन चतुर व्यक्तियों में थे, जो परिस्थितियों को खूब समझते है। पिता धोबी थे किन्तु बाल्यकाल से ही ईसाई पादरियों के उपदेशों और विशेषकर प्रलोभनो का बालक रॉबिंस के हृदय पर इतना प्रभाव पडा कि वह धीरे-धीरे ईसाई धर्म की महत्ता का विश्वासी होता गया। मिस्टर रॉबिस मद्रास प्रदेश के थे। धीरे-धीरे जूनियर क्लासेज पास करके एक ईसाई मिशनरी द्वारा सचालित चिकित्सालय में कर्मचारी हो गए। फिर ईसाई हो गए। बुद्धि अच्छी थी, अंग्रेजी भाषा की जानकारी हो गई। बाद में सद्धर्म के कारण आपका परिचय मिस्टर पीटर्सन से हो गया। वह उनकी योग्यता तथा धर्म के प्रति अटूट आस्था से विशेष प्रभावित हुए और इन्हें अच्छा पद दे दिया। उन्नति करके-करते मिस्टर रॉबिस राजपुर के कारखाने के मैनेजर बन गए।

मिस्टर रॉबिस तिजारती व्यक्ति थे। वह व्यक्तिवादी थे, मिल तथा स्पेसर के सिद्धान्तो के समर्थक। डार्विन के 'सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट' (योग्यतम का उत्थान)–सिद्धान्त पर उन्होंने काफी सुना-पढ़ा था, जिसे मौके-बेमौके प्रकट करने के लिए लालायित रहते थे। नीत्शे का वह सिद्धान्त उन पर जादू का असर डाले था, जिसमें उसने अयोग्यों तथा निर्बलों को नष्ट कर देने का प्रतिपादन किया है। जब कोई उनसे 'वीरभोग्या वसुन्धरा' का विश्लेषण करता तो झिझकते हुए कह ही तो बैठते थे–"भारत भी किसी समय सभ्य रहा होगा।" हड़ताल आदि से उन्हें घृणा थी। काम करना हो तो किया जाय, नहीं तो छोड़ दिया जाये, हड़ताल करने की क्या आवश्यकता है? यही कारण था कि वह अपने तथा अपने स्वामी के लिए बड़े लाभकर सिद्ध हुए थे। ऑक्सफोर्ड-उच्चारण से जब वह अंग्रेजी बोलते, तो कुछ अशुद्धियों के बावजूद प्रभाव जमकर रह जाता। वैसे वह तमिल

कतई भूल चुके थे और अंग्रेज-टाइप हिन्दुस्तानी बोलने में गौरव का अनुभव करते थे। शिक्षितों से अंग्रेजी में ही बातें करते।

मिस्टर रॉबिंस जानते थे कि ग्रामीण क्षेत्र में कारखाना खोलने से मनमानी करने का जो सुयोग मिलेगा, वह उद्योगप्रधान क्षेत्र में न मिल पाएगा। अतः राजपुर को पसन्द कर बैठे। कुछ समय तो मँहगाई-बोनस से लेकर टैक्स तक में उनकी चतुरता कार्य करती रही, किन्तु बाद में वह स्थिति न रह सकी। मजदूरों में जागरण का संचालन हुआ। इसका प्रमुख नायक हेमचन्द्र निकला।

हेमचन्द्र ने एक चन्दे द्वारा चलने वाली रात्रि-पाठशाला खुलवाई, जिसमें वह पढ़ाता था और कुछ अन्य व्यक्ति भी कार्य करते थे। एक रेडियो का प्रबन्ध किया और दो-एक समाचारपत्र मँगवाने लगा। चन्दा मिलने लगा और राजपुर की यह श्रमिक संस्था उन्नति करती गई। हेमचन्द्र का मजदूरों और क्लर्कों पर बड़ा प्रभाव पड़ा, और बिना इच्छा तथा प्रत्यक्ष जानकारी के ही वह उनका नेता बन बैठा। कभी-कभी वह रूस, अमेरिका और न्यूजीलैण्ड आदि देशों में श्रमिकों की स्थिति भी अपने मजदूरों को बतलाता और यह भी स्पष्ट करता कि अपने देश के ही बम्बई, अहमदाबाद तथा कानपुर आदि स्थानों में मजदूरों की क्या स्थिति है। इस प्रकार हेमचन्द्र की बातों से मजदूरों में अपने मिल के स्वामी और व्यवस्थापकों के प्रति न्याय चाहने वाली भावना दृढ़ होती गई। मिस्टर रॉबिंस बोनस देते ही न थे। कारखाना अभी नया है, कर्ज का ब्याज देना है, विशुद्ध आय है ही नहीं, आदि अनेक तर्क उनके पास थे। किन्तु मजदूर यह समझ गए थे कि न्याय का तिरस्कार हो रहा है और हमारे अज्ञान का लाभ उठाया जा रहा है। अतः उन्होंने अपनी एक छोटा-सी यूनियन स्थापित की। हेमचन्द्र उस यूनियन का प्रधान था।

मिस्टर रॉबिन्स ने सुना कि हेमचन्द्र के नेतृत्व में यूनियन खुली है, तो आपे से बाहर हो गए। किन्तु चतुरता तथा धैर्य का प्रयोग करने के बाद ही वह अन्य उपाय प्रयुक्त करते थे।। हेमचन्द्र को बंगले पर बुलाया। उसका बड़ा स्वागत किया और बोले—सुनते हैं, आप कविता करते हैं? मुझे कविता और कवियों से विशेष दिलचस्पी है।

हेमचन्द्र जानता था कि साहब इस मार्ग से होकर कहाँ जाएँगे। फिर

भी बोला नहीं, कविता मैं क्या कर सकता हूँ? कैसे कह दूँ कि कविता लिखता हूँ? लेकिन हाँ, बेतुकी पंक्तियाँ कभी-कभी लिख बैठता हूँ!

मिस्टर रॉबिन्स–दुर्भाग्य है कि भारत में कविता और कवियों का पर्याप्त सम्मान नहीं होता। यहाँ की जनता....।

हेमचन्द्र–ललित कलाओं के प्रति स्नेह न होने का उत्तरदायित्व जनता पर कम और जनता को निरक्षर तथा निर्धन रखने वाले शासन पर अधिक होता है। भारतवर्ष में भोज का भी कोई शासन था।

मिस्टर रॉबिन्स–हमारे कहने का मतलब यह है कि जनता की रुचि भी अभी....।

हेमचन्द्र–इसमे भी दोष शासन का है। कलाओं का उत्थान संस्कृति के उत्थान का प्रतीक होता है। संस्कृति का उत्थान अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता तथा समानता की ओर अग्रसर करता है। अतः जनता को अज्ञान के अंधकार में डाले रखकर उस पर मनमाना शासन करने वाले उसे कलाओं, सद्शिक्षा आदि से प्रायः दूर रखने की चेष्टा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया करते हैं। कहीं प्रजातंत्र की बात कहकर विलासी राजनीतिज्ञ कलाओं को राजकीय सहायता से वंचित करने वाला विश्लेषण करते है तो कहीं कलाकारों को त्याग और साधना का उपदेश वे ही दलबन्दी में रँगे, पदों पर खटमलों की तरह चिपके महापुरुष बनने वाले शासक देते हैं। आज का युग तर्क द्वारा दूसरों को मूर्ख बनाने का है। इस कला में निष्णात व्यक्ति नेता कहलाता है। आज की सभ्यता का सचालन पकिला राजनीति कर रही है। ससार में सदा युग का परिचालन राजनीति ही करती रही है। किन्तु आज की राजनीति शब्दाडम्बर की ओट में स्वार्थ-सिद्धि मात्र की द्योतक बन गई है। अतः शांति की स्थापना के नाम पर भिन्न-भिन्न प्रकार के बम बन रहे हैं, और सभ्यता तथा प्रजातंत्र की रक्षा के लिए मानवता के नाम पर पिछड़े हुए एशिया तथा अफ्रीका जैसे महाद्वीपों के विभिन्न देशों की जनता को दासता की चक्की में पीसा जाता है। जब दर्शन राजनीति की आत्मा होगा, जब शासक भोग में योग को छिपाकर कार्य करेगा, जनक का आदर्श प्रस्तुत करेगा, तभी राजनीति विश्व को शान्तिमय तथा सुखी बनाएगी। जब शासक दार्शनिक तथा दार्शनिक शासक होंगे, तभी विश्व आनन्द की ओर अग्रसर होगा। यही बात प्लेटो ने भी कही है किन्तु अभी तो ऐसा होने का प्रारम्भ

भी नही हुआ है

मिस्टर रॉबिन्स तिजारती व्यक्ति थे। इतना विशद विश्लेषण शिष्टता तथा स्वार्थ के कारण ही सुन सके थे। समाप्त होने पर वह ठहर न सके बाले–बडी बातें बड़ लोग करें। हम लोगों को तो उद्योगों की उन्नति द्वारा देश की सवा करनी चाहिए। भारत को मैं बहुत प्यार करता हूँ। हाँ, सुना है आपने एक यूनियन खोली है, जो हमारा बोनस के प्रश्न पर विरोध करती हे आर हडताल करने जा रही है?

हेमचन्द्र–हाँ, हमने एक ऐसी संस्था स्थापित की है। किन्तु उसका ध्येय अपने साथ ही सबका कल्याण करना भी है।

मिस्टर रॉबिन्स–देखिए, मैं तो व्यक्तिवादी हूँ। ट्रेडयूनियनवाद, अराजकतावाद, समाजवाद तथा साम्यवाद आदि से मुझे मौलिक घृणा है। समानता का ढोल पीटने वाले अप्राकृतिक तर्को द्वारा मनुष्य की कार्य–क्षमता का ह्रास करके विश्व को एक दिन अन्धकार के गह्वर में ढकेल देंगे। मैं ऐसा कोई कदम नहीं उठने दूँगा। हड़ताल देश के अनुशासन की सबसे बडो शत्रु है। वह तुमुल तथा उच्छृंखलता को प्रश्रय देती है। हड़ताल उत्पादन कम करके राष्ट्र की हानि करती है।

हेमचन्द्र–संस्था आपकी कोई हानि तो कर नहीं रही। हॉ, अन्यत्र की-सी सुविधाएं मॉगने के लिए वह सचेष्ट है, यह उसका अधिकार है। सरकार तक ऐसी संस्थाओं को मान्यता....।

मिस्टर रॉबिंस–मैं तुम से तर्क नहीं करना चाहता। तुम भूल रहे हो कि किन परिस्थितियों में तुमको रखा गया था। धर्म.. .।

हेमचन्द्र–धर्म का अर्थ यदि निष्प्राण सन्तोषमात्र है, जो धर्म श्रीमानों, शासकों और उनके खरीदे टट्टुओं की एक भ्रामक मरु–मरीचिकामात्र है। विवशताजन्य सन्तोष महत्त्वाकांक्षा का सबसे बड़ा शत्रु है। महत्त्वाकांक्षा मानव की सर्वोत्तम निधि है। मै ऐसे धर्म को अधर्म समझता हूँ जो शरीर के आभ्यन्तर की अपेक्षा बाह्य को ही सर्वस्व बना बैठता है।

मिस्टर रॉबिंस–तुम भूल रहे हो कि तुम किसके सामने बैठे हो। सर दिग्विजयनाथ और पंडित स्वरूपनारायण शास्त्री ने मुझे बताया है कि तुम कैसे हो। जाओ, यदि यह संस्था पन्द्रह दिन के अन्दर न टूटी, या तुम इससे पृथक न हुए, तो मैं तुम्हें ऐसा मजा चखाऊँगा कि नेतृत्व भूल जाओगे। मै

निकालूँगा नहीं कि तुम और तुम्हारा यूनियन कोर्ट की ओर दौड़, जहाँ कभी-कभी अपनी नामवरी के लिए पाखण्डियों की भी सुन ली जाती है। मैं तुम्हे दूसरी दवा से ही ठीक करूँगा। मेंढकी को भी जुकाम हो गया है। जाओ!

हेमचन्द्र उठकर चल दिया। उसने प्रणाम भी न किया। चलते-चलते बोला—मैं प्राणों को आसानी से न खोऊँगा। अत्याचार, अन्याय और हिंसा का प्रतिरोध न करके सहन करना अत्याचार, अन्याय और हिंसा को प्रोत्साहन देना है, पाप है। यह भी याद रखिएगा।

मिस्टर रॉबिन्स अब सम्हल न सके। अपनी छड़ी उठाकर दौड़े और दो-तीन छड़ियाँ मार ही बैठे। गर्जन अलग से हुआ—साला, पाजी, नालायक। गुस्ताखी करता है। निकल यहाँ से।

हेमचन्द्र ने छड़ी उनके हाथ मे छीन ली। उसे दूर फेंकते हुए बोला—इतना मैं क्षमा किए देता हूँ। किन्तु रॉबिन्स अब आगे न बढ़ना। आज के युग की सारी अशांति का सम्पूर्ण श्रेय अत्याचारी साम्राज्यवादियों तथा शोषणकारी पूंजीवादियों के अन्याय को है। साम्राज्यवाद, पूँजीवाद अथवा शोषणवाद अपनी कब्र स्वयं खोद रहा है।

हेमचन्द्र चला गया। मिस्टर रॉबिंस को छडी छीने जाने पर जो झटका लगा था, वह जीवन का प्रथम अनुभव था। चुपचाप खड़े रहे। कुछ देर बाद अपनी आरामकुर्सी पर बैठ गए और सिगार पीते-पीते न जाने क्या-क्या सोचते रहे।

□□□

मिस्टर रॉबिंस की छड़ियों की मार खाकर हेमचन्द्र जब बाहर निकला, तो उसके मस्तिष्क तथा शरीर की गति खिन्न थी। बहुत कुछ या कुछ नहीं सोचता हुआ घर की ओर चला जा रहा था। वह रॉबिंस और रॉबिंसवाद से परिचित था। इधर दिग्विजयनाथ भी सुलोचना से मिलते रहने के कारण असन्तुष्ट थे। सुलोचना से कुछ न कहकर वह अपने एक बुजुर्ग नौकर को उसके पास भेज चुके थे, जो प्राणों का मूल्य समझा गया था। हेमचन्द्र

जिधर से भी होकर निकलता सुलोचना मिल जाती लज्जा और खेद के कारण कायरतापूर्ण बात उससे कह न पाता। दिन-रात परिश्रम करने के कारण स्वास्थ्य भी गिर गया था। रात्रि-पाठशाला, श्रमिक-संस्था आदि का सारा बोझ उसी के कन्धों पर था। राजपती भी सन्तुष्ट न थी, हालाँकि व्यवहार मे कोई कमी नहीं आ पाई थी। इधर राजपती को सुलोचना की खबर भी बाबूलाल ने दी दी थी। हेमचन्द्र को घर-बाहर सर्वत्र द्वन्द्व था। खिन्न और त्रस्त वह जा ही रहा था कि सुलोचना की सुकोमल वाणी सुनाई पडी-नमस्ते। कहिए, यह खतरनाक रास्ता कब से और कैसे अपनाया?

हेमचन्द्र ने देखा, साथ में वही नौकर लिए सुलोचना खड़ी है। बोला-जब आपको यह मार्ग खतरनाक नहीं है, तब मुझे कैसे हो सकता है?

सुलोचना-यह बात ठीक नहीं है। प्रेम निर्भयता का जनक है। मेरा प्रेम आपके प्रम से अधिक सच्चा है, क्योंकि आप रास्ते बदलते हैं, और मै ढूँढती हूँ।

हेमचन्द्र चुप रह गया। सुलोचना बोली-हृदय की बात छिपा देना पुरुषों की विशेषता है। बता दीजिए, नित्य रास्ते बदलने का कारण क्या है? क्या ऊब गए हैं? क्या डर गए हैं? उसकी आँखें छलछला आईं।

हेमचन्द्र अस्थिर हो उठा। फिर भी, कुछ रुककर उसने कहा-नहीं, आज विशेष जल्दी थी। कल से उधर से ही निकला करूँगा। सुलोचना, ऐसा न कहा करो। आज जल्दी...।

सुलोचना-किसी की प्रतीक्षा का इतना मूल्य! खैर, मैं ईर्ष्या नहीं कर रही हूँ। उसकी ऑखो से ऑसू बह रहे थे।

हेमचन्द्र कुछ देर उसे सांत्वना देता रहा। फिर सुलोचना से खिडकी वाले रास्ते से ही निकलने का वायदा करके आगे बढ़ा। स्निग्धता, भीरुता तथा विशृंखलता की त्रिवेणी में मन तिनके की तरह तैर रहा था। यह रास्ता बीहड़-सा था। बीच में नाला पड़ता था। जान प्यारी होती है। प्राण प्रेम से भी अधिक प्रिय होता है। अतः इधर से निकलना भयजनक था। सर दिग्विजयनाथ से जिस आदमी को भेजा था, उसके शब्द हेमचन्द्र के कानो में गूँज रहे थे-बडे आदमी इज्जत के मसलों पर जेल नहीं भिजवाते, अपने आदमियों से नहीं पिटवाते, गुण्डों से मरवा डालते हैं. लाठी भी नहीं टूटती और सॉप भी मर जाता है। याद रखना, तुम्हारे प्राणों का एक भागीदार भी

हो गया है प्राण अब केवल तुम्हारे ही नही है कही उसका हिस्सा न मार बैठना। पाप के भागी बनोगे।

हेमचन्द्र बढ़ा चला जा रहा था। सिर में भीषण पीड़ा थी और पीठ छडियों की चोट के कारण दर्द कर रही थी। अँधेरा हो चला था। सोचा–अच्छा हो कि कहीं किसी शहर में जाकर नौकरी कर लूँ और जीवन बिताऊँ। यहाँ तो मृत्यु ही मृत्यु नजर आती है। हाय, राजपती का क्या होगा? वह रो पड़ा। सोचा–शीघ्र ही कानपुर या बम्बई जाऊँगा। काम लगने पर राजपती को भी ले जाऊँगा। बेचारी को विवाह का कोई सुख न मिला। अवश्य जाऊँगा। यह भी कर्तव्य है।

सहसा उसके हृदय के किसी अज्ञात कोने से यह ध्वनि सुनाई दी–'क्या यह पलायन नहीं है? क्या यह कायरता नहीं है?' उनके मन में अपने प्रति ही घृणा की एक धारा-सी बहने लगी। उसे प्रतीत हुआ, दिग्दिगन्त में एक ही घोष छापा हुआ है–'यह पलायन है, यह कायरता है।' और वह उस शून्य नीरवता में ही चिल्ला पड़ा–यह पलायन है, यह कायरता है! अकस्मात् वह काँप उठा। निकट की झाड़ी से कोई व्यक्ति निकलता दिखाई पड़ा। हेमचन्द्र भागना ही चाहता था कि महबीरा की आवाज सुनाई पडी–सम्हल जाओ। महबीरा धोखे से नहीं मारता। भागना नहीं, मरना है तो पीठ दिखाकर क्या मरे? उसने अपनी पिस्तौल की नली हेमचन्द्र की ओर की।

हेमचन्द्र कुछ भी बोल न सका। उसकी आँखों के सामने अन्धकार छा गया। वह गिरने को ही था। मुख से निकला–सुलोचना.. राजपती! और वह लड़खड़ाने लगा।

महबीरा ने कहा–ब्राह्मण हो! भगवान का नाम ले लो!

एकाएक महबीरा का हाथ पीछे से आकर एक व्यक्ति ने इतने जोर से पकड़ा कि पिस्तौल उसके हाथ से गिर पड़ी–हाय राम! उस व्यक्ति ने उसके एक घूँसा कनपटी और नाक पर मारा। दहाड-सी सुनाई दी–चाँदी के टुकड़ों के कुत्ते! तूने ले लिया राम का नाम?

महबीरा चोट सहन न कर सका। धराशायी हो गया। उस व्यक्ति ने पिस्तौल उठाकर महबीरा की ओर लक्ष्य किया और बोला–एक बार और राम का नाम ले ले।

यह सब दो-तीन क्षणों में ही हो गया। हेमचन्द्र कुछ समझ ही न पाया

कि क्या से क्या हो गया। किन्तु नवीन प्राण पाने का प्रचण्ड उल्लास संज्ञामय एवं ज्ञानमय बनाने में सफल हो गया। वह चिल्ला पडा—अरे, ब्रजेन्द्रशंकर!

ब्रजेन्द्रशंकर बोला—पहले एक काम हो जाय, तब दूसरा होगा। महबीरा को ठोकर लगाकर बोला—ले लिया राम का नाम?

महबीरा कुछ न बोला। बजेन्द्रशंकर ने झुककर देखा। ओजस्वी हास से युक्त मुख से शब्द निकले—अरे, यह तो इतने में ही बेहोश हो गया। यही गुण्डा महबीरा था? मारूँगा जगाकर ही।

हेमचन्द्र ने कहा—छोड़ दो।

ब्रजेन्द्रशंकर—अभी आप चुप रहिए। इस समय मैं अपने कर्त्तव्य का निश्चय स्वयं कर लूँगा। मेरी क्रांति गुलामी की जंजीरों के इन देशी तालो को तोड़ना भी अपना कर्तव्य समझती है। देखिए, आँखें खोल रहा है।

हेमचन्द्र चुप रहा। सुना, ब्रजेन्द्रशंकर कह रहा है—ले लो राम का नाम गीदड़ महबीरा। मेरा नाम जान लो—ब्रजेन्द्रशंकर।

महबीरा कुछ न बोल सका। मुँह और नाक से लहू बह रहा था। हेमचन्द्र ने ब्रजेन्द्रशंकर के पैर पकड़ लिए—मेरे लिए इसे छोड दो।

ब्रजेन्द्रशंकर—चुप रहिए। इसका यही दण्ड है। एक बार इसे क्षमा कर दिया था, नहीं तो इस कुत्ते की क्या हस्ती थी कि आपके खेत ले लेता। दिग्विजयनाथ की क्या हस्ती थी कि वह आप पर अत्याचार कर सकते। आपका सिद्धान्तवाद मुझे पसन्द नही है।

हेमचन्द्र—मै कोई सिद्धान्त नहीं मानता। मैं हिंसा को बढ़ावा देना हिंसा मानता हूँ, अहिंसा नहीं। लेकिन इसके बाल-बच्चे हैं। एक बार और छोड़ दो। देखो, रो रहा है।

ब्रजेन्द्रशंकर की मुद्रा बदल गई। पिस्तौल जेब में रखते हुए बोला—आप आज मेरी आत्मा को कुचल रहे हैं। होगा। जाओ महबीरा, सावधान रहना, नहीं तो कुत्ते की मौत मरोगे। यह घटना गुप्त रहेगी। खेतों पर कल से मास्टर साहब का कब्जा होगा।

महबीरा ने केवल इतना कहा—जो हुकुम। और उसने आँखें बन्द कर लीं। हेमचन्द्र बोला—क्या जियेगा नहीं!

ब्रजेन्द्रशंकर बोला—सबेरे तक होश मे आएगा। घूँसा कुछ ढीला हो गया था। मैं क्या जानता था कि आधे दर्जन दाँत खोकर यह व्यक्ति कुछ

और जिएगा। आप अधिक डरिएगा नहीं। मैं सब जानता हूँ। अपना काम कीजिए। जाइए, रुकिए नहीं।

और वह निकट की झाड़ी से होकर कहीं अन्तर्धान हो गया।

□□□

राजपती सोचा करती थी कि हेमचन्द्र से विवाह करके वह स्वर्गीय उल्लास का मधुमय उपभोग करेगी। अन्यत्र स्त्री का जो अपमान होता है, वह यहाँ स्वप्न में भी न हागा। सुन्दर और सुशिक्षित वर मिलेगा तथा अन्य स्त्रियाँ उससे ईर्ष्या करेंगी। उसने अपने भविष्य के कल्पनामय स्वप्न-चित्र खीचे थे। जब वे पूरे न हुए, तो वह क्लान्त रहने लगी। हेमचन्द्र प्रभात वेला से लेकर अर्द्धरात्रि तक व्यस्त रहता। सबेरे चार बजे के करीब उठकर टहलने निकल पड़ता। लौटकर भोजन के बाद काम पर चला जाता। वहाँ दोपहर के लिए राजपती कुछ बनाकर दे देती थी। शाम को आकर कुछ खा-पीकर फिर यूनियन तथा श्रमिक-हितकारी संस्था की ओर चल पड़ता।

यूनियन मे वही शिक्षित व्यक्ति था। क्लर्को मे कोई यूनियन के निकट झाँकता तक न था। कौन नौकरी खोए, बला मोल ले! मजदूरों में कोई पढा-लिखा न था। अतः काम करना पड़ता था। राजपुर में शक्कर के दो-एक और कारखाने थे। वे भी यूनियन में सम्मिलित हो गये। चन्दे का हिसाब भी बढ़ गया, जिसमें जरा-सी भी भूल रसातल पहुँचा सकती थी। हेमचन्द्र को कुछ समय मजदूरो को पढाना पडता था। वह रात्रि के लिए एक अध्यापक रखने को प्रस्तुत था। किन्तु कोई अध्यापक मिलता ही न था। रात्रि को जब काफी समय गए हेमचन्द्र घर पहुँचता, राजपती को प्रतीक्षा करते पाता। डाँटता—तुम क्यों प्राण देने पर तुली हो? इतनी रात तक जागना किसने सिखाया है?

राजपती के नेत्र उसे अन्धकार में न दिखाई देते थे। घर के अन्दर आने पर यदि कोई ध्यान से देखता, तो उनका गीलापन पोंछे जाने पर भी प्रतिभासित हो जाता। वह कुछ न बोलती। थका हुआ हेमचन्द्र बिगड पड़ता—न बोलने की कसम खा रखी है? तुम तो जहर में बुझी हो।

राजपती कहती—जब तुम प्राण देने पर तुले हो, तो मैं क्यों न तुलूँ? मैं तो तुमसे पहले प्राण दूँगी न? सबसे बैर मोल लेते हो। रात का आना-जाना मुझे कँपाए रहता है। न जाने क्या-क्या सोचा करती हूँ! और वह जोर से रो पड़ती।

हेमचन्द्र का सारा क्रोध लुप्त हो जाता, राजपती का हाथ पकड़कर कहता क्या करूँ? कुछ सेवा धर्म...।

राजपती—सेवा करना धर्म है। किन्तु अपने अमूल्य प्राणों को ठीकरी समझना अधर्म है।

हेमचन्द्र निरुत्तर हो जाता। भोजन करने के उपरान्त तुरन्त सो जाता और प्रातः उठकर टहलने चल देता। यही रोज का हाल था। राजपती रात में भी रोया करती। वह विवाहित लड़कियों की रसीली बातें सुना करती थी, जिनमें गुदगुदा देने वाली मादकता और रोएँ खड़े कर देने वाली उल्लास की धारा बहती थी। परन्तु उसे तो अविवाहित होने के समय का भी उल्लास न मिल रहा था। पहले के हेमचन्द्र और अब के हेमचन्द्र में जमीन-आसमान का फर्क मालूम पड़ता था।

शाम का समय था। राजपती चिराग जलाकर बैठी कुछ सोच रही थी। बाबूलाल के खाँसने की आवाज सुनकर उसने थोड़ा-सा घूँघट मुख पर सरका लिया। बाबूलाल ने आवाज दी—बहू, आग तो न होगी?

राजपती—आग तो नहीं है।

बाबूलाल आगे आ चुके थे, बोले—अरे ! अकेली बैठी हो? जी ऊबता होगा? देखो, बिटिया को भेज दिया करूँगा। इतना भी ध्यान नहीं रखते। रखे भी तो कैसे रखें? सुलोचना के चक्कर में जो फँसे हैं।' कुछ रुककर बोले—'हाय रे कालिकाल! घर की देवी-स्वरूपा स्त्रियों को छोड़कर बाहर की छोकरियों पर डोरे डालना ही आज के छोकरों का धन्धा हो गया है। मिल में छुट्टी पाँच बज होती है। लेकिन आएँ तो कैसे आएँ? गुलछर्रे उडा रहे होंगे, सेवा-वेवा तो बहाना है! अच्छा, बिटिया, चला।' वे चले गये। आए थे लेने, पर गये देकर—आग!

राजपती के सिर पर जैसे बिजली-सी गिरी। आशंका तथा तर्क-वितर्क मस्तिष्क को आलोड़ित करने लगे। मन में आया, बाबूलाल से इस विषय में अधिकाधिक पूछे। लाज के मारे न पूछ सकी। उसका सिर दर्द करने लगा

चुपचाप लेट गई कुछ रोती, कुछ सोचती. भोजन बनाने का कोई स्मरण ही न रहा। क्रोध और ग्लानि के मारे उसका माथा फटा जाता था।

काफी रात गए हेमचन्द्र आया। उसने राजपती को प्रतीक्षा करते न पाया। अन्दर जाकर पुकारा—राजपती!

उसे कोई उत्तर न मिला। इधर-उधर देखा, ऑगन के किनारे एक चारपाई पर राजपती औंधी पड़ी थी। चिराग लेकर देखा, सारा तकिया भीग गया था। हेमचन्द्र की समझ में कुछ भी न आया, उसके फिर पुकारा—राजपती।

फिर भी कोई उत्तर न मिला, खीझकर बोला—क्या मर गयी?

अब की उत्तर मिल गया—तुम तो मनाते ही हो। मर भी जाऊँगी।

हेमचन्द्र कुछ न समझ सका। आज वह शाम को घर न आया था। भूख बहुत जोर से लगी थी। यूनियन में कुछ तर्क-वितर्क भी हो गया था। थका और क्रुद्ध वह उबल पडा—मर जाओ! मुझे छुट्टी मिले!

राजपती ने अब की कुछ तेज आवाज में कहा—छुट्टी ऐसे न मिलेगी जहर खिला दो। तुम्हारे हाथ का विष पीकर मर जाऊँ, यही अच्छा है। देख लो एक बार यही करके! तुम्हारे रास्ते का काँटा दूर हो, और मेरा दुखी जीवन भी समाप्त हो।

हेमचन्द्र कुछ देर तो लेटा रहा, लेकिन भूख न रोक सका। पूछा—कुछ खाने को है या नहीं?

राजपती—नहीं, आज मेरी तबीयत ठीक नही है।

हेमचन्द्र—लड़ने के लिए तबीयत ठीक है, काम करने के लिए नही। तुम कुलटा हो!

राजपती—तुम दूर से शीशा देख रहे होगे। मैं किसी की गुलाम नहीं हूँ।

हेमचन्द्र जीवन में आज क्रोध को न सम्हाल सका। उठकर राजपती के दो-तीन तमाचे जड़ दिये। राजपती बड़ी रात तक रोती और अपने को कोसती रही। हेमचन्द्र नितान्त शान्त स्वभाव वाली, सहनशील और सुकोमल इस सुन्दरी के आकस्मिक परिवर्तन पर आश्चर्य करता हुआ भूख से तड़पता रहा।

सम्भव है, उसे ज्ञात न रहा हो कि यह तो अब नित्य का कार्यक्रम होने जा रहा है।

□□□

शास्त्रीजी अपनी बुद्धिमत्ता के कारण प्रिंसिपल को हटाने और कालीपद को लखनऊ में लगवा देने में सफल हो गये। पंकजजी विद्यालय के प्रिंसिपल बनाये गये। काफी बचत हुई, और कठपुतली प्रिंसिपल के होने से अन्तर्विरोध की आशंका भी समाप्त हो गई।

किन्तु इधर शास्त्रीजी को एक नई परेशानी का सामना करना पड़ा। अनेक पर्चे उनके विद्यालय की पोल खोलने के लिए निकाले गए थे, जिनमें बारीक-बारीक बाते दी हुई थीं। इन पर्चो में शास्त्रीजी की अनेक बुराइयों पर प्रकाश डाला गया था। जहाँ देखो, ये पर्चे नजर आते थे। बसों में, रेल के डिब्बों में, स्टेशन पर, धर्मशाला में, सर्वत्र पर्चे-ही-पर्चे दिखाई देते थे। नीच प्रेस तथा छपाने वालों के नाम भी थे, पर ऐसे जिन्हें शास्त्रीजी या कोई न जानता था। शास्त्रीजी की बड़ी बदनामी हुई। अनेक बातें जैसे हेमचन्द्र का वेतन, प्रिंसिपल का हटाया जाना, पंखा फीस आदि ऐसी थीं, जिनका उत्तर शास्त्रीजी देते भी तो क्या देते? बेचारे तड़पकर रह गए। कसेशन किस प्रकार घोटा जाता है, मास्टरों को अस्सी देकर सवा-सौ के लिए किस प्रकार हस्ताक्षर कराये जाते हैं आदि बातों का उत्तर तो शास्त्रीजी कानून की ओट लेकर दे भी सकते थे। शास्त्रीजी को काटो को खून न था। चारों ओर विद्यालय और शास्त्रीजी की कुख्याति फैल गई। चर्चा का विषय बन गया। विरोध-मात्र को वरदान मिल गया। नए प्रवेश रुक गए, पुराने छात्र राजपुर कॉलेज की ओर सरकने लगे। शास्त्रीजी विवश और निरुपाय थे। कौन पर्चे बॉटता है या चिपकाता है, इन प्रश्नों का उत्तर कोई न दे पाता था। शास्त्रीजी का शक निकाले गए प्रिंसिपल पर था, किन्तु वास्तव में पर्चो का उद्गम ब्रजेन्द्रशंकर के व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखता था।

पर्चो के विषय में हेमचन्द्र ने भी कुछ वाक्य यत्र-तत्र कहे थे, जिनका सम्बन्ध उनकी सत्यता के पुष्टीकरण से था। शास्त्रीजी का पारा चढ़ गया, किन्तु हेमचन्द्र के बढ़े हुए प्रभाव से अवगत थे। हवा का रुख पहचानते थे। उन्हें मिस्टर रॉबिंस और हेमचन्द्र के बीच शत्रुतापूर्ण वैमनस्य का प्रत्येक समाचार ज्ञात था। अतः उनकी सेवा मे पहुँचे।

मिस्टर रॉबिन्स को पर्चो के सम्बन्ध में जानकारी थी। स्वयं उनके पास कई पर्चे आये थे। इसलिए शास्त्रीजी से विशेष रूप से मिले। बोले-सारी कारस्तानी इस नेता बनने वाले हेमचन्द्र की है। इसका बड़ा

आतक है, महबीरा ने जाने क्यो जमीन लौटा दी. सर दिग्विजयनाथ नपुसक हैं। आपकी बड़ी हानि कर रहा है। यह कब तक होगा?

शास्त्रीजी–आपकी भी तो जड़ खोद रहा है। कुछ कीजिए, सहयोग दूँगा।

मिस्टर रॉबिंस–मैं तो करूँगा ही, लेकिन सभी तो डरते हैं। महबीरा ही रह गया है। बाकी सभी से मिल चुका हूँ। एक महीने का नोटिस मुझे दिया है, इसके बाद हड़ताल होगी। क्या करूँ? कहीं महबीरा भी..।

शास्त्रीजी–कब बुलाया है उसे? वह तो मेरा चेला है।

मिस्टर रॉबिस–आता ही होगा, आप टाइम पर आए। मैंने पुलिस सुपरिन्टेण्डेन्ट को भी काफी लालच दिया था। पर वह न माना, न जाने क्यो....?

शास्त्रीजी–उसका लड़का इसका प्रिय शिष्य है। मैंने ही उस गुण्डे को यहाँ से हटाया था। वह न मानेगा। काम तो महबीरा से ही बनेगा।

कुछ देर इस विषय पर बातचीत होती रही। इसी बीच महबीरा आ गया। शास्त्रीजी पहचान नहीं पाये। बोले–अरे, तुम तो बुड्ढे हो गये! मुँह कैसा हो गया है? दाँत कहाँ गये?

महबीरा–रात में एक दिन ठोकर लग गई, गिर गए। दुर्दशा है महाराज शरीर की.. ..।

मिस्टर रॉबिन्स–हेमचन्द्र को खेत क्यों दे दिए? डर गये क्या?

महबीरा कुछ रुककर बोला–उसी के थे। उससे क्या डरता, डरता किसी और से हूँ!

शास्त्रीजी–अरे, तुम भगत कब-से हो गए हो? देखना, एक दिन दुश्मन भगत बनने पर क्या-क्या करेंगे? सिंह की सिंहता कभी नहीं छूटती। तुम क्या कर रहे हो? महबीरा की आवाज में यह भीरुता कैसी देख रहा हूँ! वीर, तुम क्या हो गए? शास्त्रीजी ने सिर पकड लिया।

महबीरा जरा जोर से बोला–पंडित, महबीरा तो वही है लेकिन हेमचन्द्र का विरोध अब कोई नहीं कर सकता। उसे बरमबाबा सिद्ध हैं। यह बात है, मैं झूठ नहीं कहता।

मिस्टर रॉबिंस–ह-ह-ह-ह! तुम भी खूब कहते हो। कहीं बरमबाबा ने ही तो यह हालत नहीं की? ऐसे दुष्ट से मत डरो! मेरा नमक खाता है, मरी

जड खोदता है शास्त्रीजी का नमक खाया, उनकी जड खोदी और खोद रहा है। ऐसे नमकहराम की मदद बरमबाबा क्या, शैतान भी नहीं कर सकता। बोलो, क्या कहते हो? खूब रुपया दूँगा।

शास्त्रीजी-दो-सौ रुपये मैं भी दूँगा। ऊपर से दिग्विजयनाथ से भी कुछ पा जाओगे। इतना धन इतनी आसानी से मिल रहा है पुण्य अलग होगा, मेरे जैसों का आशीष अलग से मिलेगा। न मरा, तो हेमचन्द्र का तुम पर आतक सर्वविदित हो जायेगा। सारा प्रभाव मिट्टी में मिल जायगा। हम लाग सन्तुष्ट न रहेंगे, और काम तो होगा ही!

महबीरा कुछ सोचता रहा, प्रतिहिंसा का पूरा प्रभाव उस पर था। वह कृतज्ञता क प्रतीक सज्जन वीरों में न था, जा एहसान का मूल्य समझते हे। उस अपना अपमान भूला न था, वह इस चीज को भी समझता था कि सामने से ब्रजेन्द्रशकर उसे इतनी सरलता से विवश न कर सकता था। यदि उसे हेमचन्द्र से कोई हमदर्दी थी, तो वह ब्रजेन्द्रशंकर के आतंक के कारण थी। इधर इतना रुपया भी कम न था। मिस्टर रॉबिंस, सर दिग्विजयनाथ और शास्त्रीजी से उसे वर्ष में हजारों का लाभ होता था। जमानत आदि की सहायता भी जब-तब मिल जाती थी। तीनों बड़े आदमी आज एक केन्द्र पर आ गए थे। स्वार्थ, लोभ, प्रतिहिंसा और आतक की इस विचित्र स्थिति मे वह द्विविधा में पड़ा था।

शास्त्रीजी ने ताड लिया ऊँट किस करवट बैठ रहा है।

बोले—मालूम पड़ता है, डर रहे हो। ओह, मैं क्या देख रहा हूँ? सिह महबीरा, जिसे मैं महावीर हनुमान का अवतार समझता था, आज गीदड ..

महबीरा गरज पड़ा—बस कीजिए शास्त्रीजी, चाहे प्राण चले जाएँ, पर हेमचन्द्र को मैं न जीने दूँगा।

मिस्टर रॉबिन्स—देखिए शास्त्रीजी, शेर ही है। बूढ़ा होने पर भी शेर शेर ही रहता है।

शास्त्रीजी—मैं पहले से ही जानता था। यह सब तो मैंने केवल उत्साह बढ़ाने के लिए कहा था। महाबीर अपनी वीरता को भूल गया था, मै जामवन्त बनकर उसे याद दिलाना और उत्साह प्रदान करना चाहता था। वह हुआ भी।

मिस्टर रॉबिन्स—अच्छा, तो लो, यह कुछ रुपये लेते जाओ जिससे

तुम्हे कुछ शक्ति मिले यह कहकर उन्होने नोटो का बण्डल महबीरा के हाथों में रख दिया।

□□□

पारिवारिक उल्लास ही जीवन के उल्लास का कारण होता है। हेमचन्द्र का जीवन इधर विशृंखल तथा दु:खमय हो गया था। राजपती भोजन बनाती, किन्तु खिलाते समय उसके मुख पर वह स्निग्धता न रहती थी, जो शाक का भी अमृत रूप पुरोडाश बना देती है। वह हेमचन्द्र के सारे कार्य प्राय: पूर्ववत् ही करती, किन्तु उनमें वह उत्साह न होता, जो श्रम के पश्चात प्रशंसा सुनने की मीठी उत्कण्ठा में होता है। वह बहुत ही कम मुस्कराती। और यदि मुस्कराती भी, ऐसा प्रतीत होता, मानो रोदन भी रो रहा है। उसे खेद था कि उस दिन उसने हेमचन्द्र से बुरा व्यवहार किया, किन्तु हेमचन्द्र ने उसके साथ जो व्यवहार किया, उसका उसे अधिक खेद था। उसने क्षमा की भीख न माँगी थी। हेमचन्द्र भी तना था। दोनों में बोलचाल प्राय: बन्द-सा रहता। केवल आवश्यक प्रश्नोत्तर ही संक्षिप्त रूप में हो जाते थे। हेमचन्द्र तो बाहर रहता था, मन बहला रहता। किन्तु राजपती का शरीर दिन पर दिन क्षीण होता जाता था।

प्राय: नित्य ही दोनों में झगड़ा होता। राजपती ने मौन अस्त्र धारण किया था, जिसकी चोट आवेश में शस्त्र की चोट से अधिक घाव कर देती है। हेमचन्द्र समझता कि न बोलकर यह मेरा अपमान कर रही है। उधर राजपती सोचती कि जब न बोलने पर यह हाल है, तब बोलने पर शायद प्राण ही ले लें। हेमचन्द्र का हाथ छूट चुका था। कभी-कभी राजपती को मार भी बैठता। इस प्रकार राजपती जहाँ कंकाल हो रही थी, वहाँ हेमचन्द्र भी उसी पथ पर चलता प्रतीत हो रहा था।

सन्धया का समय था। हेमचन्द्र काम से लौटकर आया। देखा, राजपती बैठी रो रही है। उसे देखकर राजपती ने आँसू पोंछ लिए और उठकर हाथ-पैर धोने को जल लेने चल पड़ी। उसका मुख म्लान कमल की भाँति व्यथा के भार से दबा था। हेमचन्द्र को सहानुभूति के स्थान पर क्रोध आ

गया बोला इस तरह मरने से तो अच्छा है किसी कुए तालाब की शरण लो। तुमने मेरा जीवन और भविष्य सभी-कुछ बिगाड़ दिया। न मरोगी ही, न कहीं जाओगी ही। अजीब....।

राजपती दुर्बल स्वर में बोली–एक पुडिया जहर लेकर अपने हाथ से दे दो, देख लेना, मैं झूठ कहती हूँ या सच, जो तुम्हें उसी दिन मुझसे छुटकारा न मिल जाय। प्राण तुम्हारे हैं, तुम्हीं ले सकते हो। शरीर बाहर से मेरा है, उसे मैं गिरा रही हूँ। शायद इसी तरह तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाये। इसके बाद वह फूट-फूटकर रोने लगी।

हेमचन्द्र को कुछ रहम आया। थोड़ा कोमल वाणी में पूछा–आखिर इसका कारण क्या है? खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने....।

राजपती–स्त्री के लिए खाना-पीना और पहनना-ओढ़ना ही सब-कुछ नहीं होता। ये सब वस्तुएं तो शरीर से सम्बन्ध रखती हैं। उसे चाहिए सच्चा स्नेह, जो उसकी आत्मा का सर्वस्व है। वह तुम कहाँ दे सके? पहले नाटक रच दिया था।

हेमचन्द्र को अन्तिम वाक्य पर तैश आ गया। बोला–मैं किसी को छलने नहीं गया था। मेरे घर में तुम्हारे बाप आकर टिके, तुमसे मेरा ब्याह उनकी प्रार्थना नर ही हुआ है। वह यहाँ हैं नहीं, नहीं तो पुछवा देता।

राजपती ने कुछ उत्तर न दिया। चल दी। पानी लाकर केवल इतना बोली–पुड़ियाा तुम ला दो, खा मैं लूँगी। हँसते-हँसते खा लूँगी। हॉ, पुड़िया तो प्रेम से ही लानी पड़ेगी! ले आना, तुम्हें मेरी कसम है। तुम दुखी हो, सुखी हो जाओगे। मैं मर ही रही हूँ, शीघ्र मर जाऊँगी। अच्छा ही रहेगा, छुट्टी मिलेगी। बोलो, लाओगे?

हेमचन्द्र–मैं कोई हत्यारा....।

राजपती–यह कैसे कहा जा सकता है? मारने वाले दो प्रकार के होते हैं–एक तो जल्दी खत्म कर देते हैं, दूसरे धीरे-धीरे तड़पा कर मारते हैं।

हेमचन्द्र–तो मैं बड़ा ही निर्मन हत्यारा हूँ। तब तो तुम्हारी इच्छा पूरी कर देना ही श्रेयस्कर है।

राजपती–मैं तो कहती ही थी।

हेमचन्द्र–धतूरे के बीज खाकर मरो। मैं अपने हाथ से पुड़िया-सुड़िया न दूँगा।

बातें बढती रहीं। हेमचन्द्र ने राजपती को खूब मारा, और भूखा ही राजपुर चल दिया। राजपती मार खाने पर भी शान्त रही, रोई तक नही।

आज हेमचन्द्र थका, क्लान्त और भूखा था। किसी तरह कुछ देर पढाकर वह घर चल पड़ा। सिर फटा जा रहा था, पैर मन-मन भर के लग रहे थे, पलकें झुकी पड़ती थीं। फिर भी मस्तिष्क न थका था। सोचता था—यह राजपती जीवन की रात्रि में धूमकेतु बन गई! यह न हाती तो सुलोचना....। ओह!. .अब यह जान लेन-देने पर तुली है। दुष्ट है। और इसी प्रकार के सहस्रों विचार दिमाग में मँडराते रहे।

सुनसान रास्ता था। दिग्विजयनाथ के डर से हेमचन्द्र इधर मे ही निकलता था। आकाश में कुछ बादल छा गए थे। हवा भी बहुत जोर से चल रही थी। हेमचन्द्र निरुद्देश्य यात्री की भाँति कभी धीरे, तो कभी कुछ जार स चला जा रहा था। अचानक उसके दिमाग पर महबीरावाली घटना छा गई। सोचा—यह प्राण वास्तव में ब्रजेन्द्रशंकर के है। कैसा वीर और चतुर निकला? आग भी उसके लिए हिम बन जाती है।

एकाएक कुछ परिचित-सी खड़खडाहट हुई। हेमचन्द्र भय से पीला पड गया। देखा, तो सामने महबीरा पिस्तौल लिए खड़ा था। कह रहा था—बेटा, आज नहीं बचोगे। संभलो। ले लो भगवा...

सहसा बाईं ओर से विस्फोटमयी ध्वनि उस वन्य प्रदेश में भरती हुई एक गोली आकर महबीरा की कनपटी के ऊपर वाले भाग मे घुस गई। खून की बौछार करते हुए वह गिर पड़ा और उसी के साथ ही अक्षत हेमचन्द्र भी भयाकुल धराशायी हो गया। महाबीरा के मुख से मृतप्राय सिंह की-सी दुर्बल दहाडें भी न निकलीं, और उसके नेत्र बन्द हो गए। हेमचन्द्र ने आँखे खोली तो देखा फौजी सिपाही की वर्दी पहने उसके सामने ब्रजेन्द्रशंकर खडा था।

हेमचन्द्र अवाक् रह गया। उठकर बैठ गया। उसकी इस स्थिति को देखकर प्रचण्ड हँसी हँसते हुए ब्रजेन्द्रशंकर बोला—पहली बार मैंने क्या कहा था? आज यदि न होता, तो? आपने मुझे उस बार इसे न मार देने के कारण जो कष्ट दिया, वह बहुत अधिक है। खैर, संभव है अभी इसकी साँस चल रही हो। पैर से एक हल्की-सी ठोकर लगाकर महाबीरा से बोला—वीरवर आँखें खोलकर मरे दर्शन कर लो। तुम्हारी वीरता का परिचय मुझे मिल गया

और तुम्हें तुम्हारे पापा का फल तुम्हे।

महबीरा ने चौथाई आँखें खोलीं। बुझने वाली दृष्टि में लज्जा और ग्लानि भरी थी। वह कुछ बाल न सका और उनके प्राण-पछी शून्य में उड गए।

□□□

राजपती हेमचन्द्र के चले जाने के बाद बहुत ही चिंतित अवस्था में लट-लटे कुछ सोचती रही। कभी रोती, कभी हँसती, कभी चिल्लाने लगती। विचित्रताओं के बावजूद एक विचार उसके मस्तिष्क में बराबर चक्कर काट रहा था-यह मेरे जीवन को मूल्यहीन समझते हैं? जब अपना स्नेह सुलोचना को दे चुके थे, तब मुझे क्यों मृत्यु की ओर घसीट लाए? उन्मत्त-सी कुछ देर इधर-उधर चक्कर काटती रही। फिर कुछ जोर से बड़बड़ाई-इस याचना-भर जीवन से तो मृत्यु ही अच्छी हे। सुलोचना को निन्यानबे प्रतिशत प्रेम देकर भी यदि यह मुझे एक प्रतिशत तक दिए रहते, वहाँ तक मैं जीने का मूल्य समझ लेती। प्रेम के बिना नारी का जीवन व्यर्थ है। वह हँस पड़ी। बहुत दिनो से कुछ अफीम उसके पास रखी थी। दरवाजा बंद करके उसने वह अफीम निकाली और तेल में मिला ली। एक सूखी मुस्कान उसके अधरो पर और आँसू की कुछ बूँदें उसकी आँखों पर झलक गई। और उसने जी कडा करके वह विष पी लिया।

थोड़ी देर बाद सहसा कुछ याद आया। पछताती हुई उठी, शीघ्रता से कलम-दवात और कागज निकाला। काँपते हाथों लिखा-"प्रियतम, यह जीवन तुम्हारा था। जब तुम इसे नहीं चाहते, यह तुम्हारे जीवन-पथ का कण्टकाकीर्ण व्यवधान बन गया, तब इसका न रहना ही ठीक है। तुमने मुझे घृणा दी, मैंने तुम्हें प्रेम दिया। खैर, एक प्रार्थना है-मेरे बाद ही मुझे प्रम दे देना, कभी-कभी मुझे याद ही कर लेना, आँसू चाहे न भी बहें, मुझे सन्तोष हो जायेगा। मेरी त्रुटियाँ क्षमा करना! मैं तुम्हारे सुख के लिए प्राण दे रही हूँ, इसका मुझे हर्ष है, गर्व है। सुलोच...!" इसके आगे वह कुछ न लिख सकी। सिर चकरा रहा था, आँखें मुरझा रही थीं, हाथ काँप रहे थे, शरीर

पीडा से टूट रहा था। उसने अपना नाम पत्र के नीचे लिखा और जमीन पर गिर पड़ी।

हेमचन्द्र महबीरा के काण्ड के पश्चात घर की ओर लौटा। ब्रजेन्द्रशंकर ने अपने विषय मे कुछ न बताया था। घटना की भयकरता पर सोचता-कॉपता किसी प्रकार घर आया। भूख अब लौट आई थी। देखा, दरवाजा बन्द है। भडभडाया। किन्तु अन्दर से कोई उत्तर न आया। जोर-जोर स भडभडाने लगा। फिर भी उत्तर न आया। एक अप्रत्याशित आशंका से हृदय कॉप गया। पागल की भाँति दरवाजा भडभडाता रहा। पास के मकानो के लोग निकल आए। कुछ देर बाद बगल की छत से जाकर हेमचन्द्र अपने घर में कूदा। ऑगन के निकट उसने जो देखा, वह अप्रत्याशित था। हाँ, मृतप्राय राजपती की साँस अभी चल रही थीं। उसकी आँखे बन्द थीं और पलकें गीली। गालों पर ऑसुओं की धाराओं के धुँधले चिह्न बने थे। क्षणमात्र में ही हेमचन्द्र समझ गया कि राजपती की सॉस और इस विश्व का साथ अब कुछ ही पलो के लिए है।

हेमचन्द्र ने गुलाबजल के छींटे राजपती के मुँह पर दिए। कुछ पलो के बाद उसने अपने नेत्र खोले और हेमचन्द्र के मुख पर टिका दिए। व्याकुलता से उसने शरीर को उठाने की एक असफल चेष्टा की, जाने क्यों हाथ उठाने का विशेष प्रयत्न किया। प्राणों का नैसर्गिक मोह क्षण भर के लिए उसके सम्मुख साकार हो गया। आँखों में ऑसू भी न आ सके और वे बन्द हो गई।

हेमचन्द्र बच्चों की भाँति चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। जो लोग बाहर खड़े थे, व्यग्र हो उठे। अन्यान्य लोग भी आ गए। सबने दरवाजा खुलवाया। अन्दर जाकर मृत राजपती और विकल हेमचन्द्र को देखा। हेमचन्द्र को आज ही ज्ञात हुआ कि उसका हृदय अनिन्द्य राजपती से जाने-अनजाने कितना प्रेम करता था। उसे राजपती की हत्या का सारा उत्तरदायित्व अपने में निहित प्रतीत हुआ। "मैं इस अतीव सुन्दरी किशोरी का हत्यारा हूँ।" यह वाक्य उसके हृदय को झकझोरे दे रहा था।

मुखिया आए। हेमचन्द्र को भयभीय करने वाले अप्रत्यक्ष अनुभवपूर्ण वाक्यों का सन्तुलित प्रयोग करके जब विशेष सफल न हुए, तब शीघ्र ही थाने पर आदमी भेजा। वह पत्र भी मिला। हेमचन्द्र ने पढ़ा। किन्तु रोने के

अतिरिक्त अब उसके लिए कौन-सा अवलम्बन रह गया था?

घर के बाहर इस घटना का आलोचनात्मक विश्लेषण हो रहा था, जिसमें सबसे अधिक हिस्सा बाबूलाल पंडित ले रहे थे। वह धीरे-धीरे कहते थे—भैया, यह अंगरेजिहा हेमचन्द्र किस्टान हो गया है। सुलोचना दिग्विजयनाथ राजा की लड़की से कुछ कनेक्सन हो गया था। लेकिन उसका विवाह हो गया। यह फिर भी दीवाना रहा। राजपती को मालूम हो गया होगा। ऐसी बात छिपती कहाँ है? 'कामी किमि कि रहै अकलंका व्यवहार?' बुरा था ही, रोज-रोज की मार-पीट न झली गई। बेचारी मर मिटी।

इसी बीच भीड़ से सैनिक वेशभूषा में एक युवक निकल आया और बाबूलाल का हाथ पकड़कर बहुत जोर से एक कंटाप रसीद करते हुए बोला—और इस आत्महत्या की जड़ में तुम्हारा शैतान छिपा है, यह क्यों नहीं कहते?

वज्र की चोट बाबूलाल ने ग्रंथों में पढ़ी थी, आज वह उन्हीं पर पड़ गई। गिर पड़ते, किन्तु हाथ युवक पकड़े था। भीड़ में सब मूक थे, धीरे-धीरे सरकने लगे। विचित्र तुमुल हुआ, बाहर निकलकर हेमचन्द्र ने देखा, तो बाबूलाल का हाथ पकड़े ब्रजेन्द्रशंकर खड़ा था।

दूसरी ओर झापड़ लगाते हुए ब्रजेन्द्रशंकर ने गर्जना की—बोलता क्यों नहीं हत्यारे!

मुखिया के मुख से कुछ प्रभावपूर्ण वाणी में निकला—सार्जेंट साहब, अब छोड़ दीजिए।

ब्रजेन्द्रशंकर ने बाबूलाल को छोड़ दिया। मुखिया की ओर बढ़ कर बोला—तुमसे किसने सलाह ली थी? कमीनो, इधर-उधर झूठ-सच बोल कर सरल हृदय वालों के प्राण लेते हो और उनका घर बिगाड़ कर कानून की ओट में उन्हीं को लूटने की कोशिश करते हो। बाबूलाल के भाई हो, मुखिया हो, क्या कह रहे थे अभी अन्दर?

आतंक से सभी त्रस्त थे। इसी बीच दारोगाजी आ गए। ब्रजेन्दशंकर को देखा, तो कुछ स्याह से पड़ गए। अभिवादन करके बोले—आप यहाँ कैसे?

ब्रजेन्द्रशंकर बोला—देखो, यह काण्ड मेरे ऊपर घटा है। मैं रो नहीं रहा हूँ, यही बहुत है। जाँच-पड़ताल न्यायपूर्वक हो। कानून की ओट लेकर

मनुष्यता का गला न घोंटा जाये।

उसने हेमचन्द्र का हाथ पकड़ा और एकान्त में ले गया। वहीं उसकी मोटर-साइकिल खड़ी थी। आँखों पर रूमाल फेरते हुए कहा—प्रेम एक दुर्बलता है, किन्तु इस दुर्बलता से बच सकना सम्भव नहीं है। बाबूलाल के साथ ही आप भी इस सुन्दरी के हत्यारे हैं। जी होता है, आपको दण्ड दूँ। किन्तु....।

हेमचन्द्र काँप गया। कुछ रुककर ब्रजेन्द्रशंकर बोला—सुलोचना कौड़ी है, यह मोहर थी। आप कौड़ी खो चुके थे, मोहर को आपने मृत्यु-सागर में फेंक दिया। आपने अपने जीवन में सबसे महान निधि स्वयं खो दी। इसके बाद उसका गला रुँध गया।

महबीरा की हत्या का समाचार बिजली की तरह फैल गया। सरकार उसे मारने वाले को पुरस्कार देती। किन्तु मारने वाला कौन है, इसे कोई न जानता था। जिले के पुलिस अधिकारी बहुत प्रसन्न हुए। महाबीरा के परिवार को जो पत्र मिला, वह आतंक का साकार स्वरूप ही था। सर दिग्विजयनाथ और शास्त्रीजी को खेद हुआ तथा मिस्टर रॉबिंस ने तो सबेरे का नाश्ता भी शोक से विकल होने के कारण न किया। वह पैसे को पहचानते थे। चिन्ता में लीन बैठे थे कि शास्त्रीजी आ गए। बातचीत चालू हुई। मिस्टर रॉबिंस ने आश्चर्य प्रकट किया—आखिर हाथीनिशान महबीरा को मारा किसने?

शास्त्रीजी—अरे, इसी हेमचन्द्र ने मार दिया होगा। नूरखाँ को किसने मारा था? बड़ा सरकश निकला! अहिंसावादी रहा है यह व्यक्ति, गान्धी जी का पक्का पुजारी। लेकिन बगुलाभगत था। अब देखिए, हत्या पर हत्या कर रहा है। सुना है आपने, उसकी बीवी ने आत्महत्या कर ली! पता नहीं, इसी ने कुछ कर दिया हो। इधर-उधर देखते हुए कुछ धीरे से बोले—"सर दिग्विजयनाथ की सुलोचना से उसका पुराना प्रेम था। यह आत्महत्या इसी कारण हुई है।"

मिस्टर रॉबिंस—मेरे रुपए गए। हड़ताल तो होगी ही। खैर, मैं भी देखूँगा

इस छाकर को

शास्त्रीजी–इसने मृत्यु को मानो जीत लिया है। जा भी हो, ह जीवट का आदमी। मैं आप, राजासाहब, महबीरा–सभी हार गए, लेकिन यह अभी तक ज्यो का त्यों बना है। महबीरा तो चल बसा। मेरा कॉलेज पर्चेबाजी ले डूबी। लड़के आए दिन हड़ताल करते हैं। अभी परसों प्रिंसिपल पकजजो को पीट दिया। सब राजपुर सरके जा रह है। आपका मिल भी बदनाम हा गया। दिग्विजयनाथ की इज्जत तो डूब ही गई। लेकिन यह अभी बना है। पास मे कानी-कौड़ी नहीं, कोई सहायक नहीं, अगर कहे कि पुण्य का बल है सो बात भी नही, फिर भी बचता चला जा रहा है।

मिस्टर रॉबिस–अब मैं इसको देखूँगा। या तो यही रहेगा, या मैं ही रहूँगा।

शास्त्रीजी–जीत धर्म की होगी।

इसके बाद वह सर दिग्विजयनाथ से मिलने चल दिए। सर दिग्विजयनाथ शरीर मं चमेली के तेल की मालिश करा रहे थे। शास्त्रीजी का देखते ही उठ बैठे। अभिवादन आदि के पश्चात जलपान की व्यवस्था कराई। वार्तालाप प्रारम्भ हुआ–कहिए, महबीरा तो गया न? मेरा तो दाहिना हाथ ही टूट गया।

शास्त्रीजी–वह हम सब के बड़े काम का था। बडी सहायता मिलती थी। जिसे जीवन-भर पुलिस न मार सकी उसे किसने मारा, यह भी कम कौतूहल का विषय नहीं है।

दिग्विजयनाथ–किसी ने पिस्तौल सं मारा है। कुछ दूर से मारा मालूम पडता है। नजदीक से उसे कौन मार सकता था? किसी दुश्मन ने मार दिया होगा।

शास्त्रीजी–इसी हेमचन्द्र ने तो नहीं मार गिराया!

दिग्विजयनाथ–राम भजिए! इसमें इतना दम कहाँ? इसके पास पिस्तौल कहाँ? सुनते है, महबीरा ने जो जमीन छीनी थी, वह हेमचन्द्र को लौटा दी है। मैं वह जमीन हेमचन्द्र के कब्जे में न रहने दूँगा।

शास्त्रीजी–राजा साहब, हूजूर, उससे न उलझें। बड़ा खतरनाक....।

दिग्विजयनाथ तैश में बोले–मैं इस कमीने के प्राण लेकर छोड़ूँगा। क्या करूँ, उसका सबसे बड़ा हितैषी तो मेरा रणंजय है। सुलोचना तो उस पाखण्डी को महर्षि ही समझ बैठी है। सुनता हूँ, उसकी घरवाली ने अफीम

खाकर खुदकशी कर ली है?

शास्त्रीजी- जी हाँ, सरकार, मै ..।

दिग्विजयनाथ--नपुंसक है। कमाकर ठीक-ठीक खिला न मका होगा, मर गई। सुनता हूँ, बडी लाजवाब थी। राजा साहब के चेहरे पर यौवन अँगड़ाइयाँ लेने लगी।

शास्त्रीजी ने निरपक्ष भाव से उत्तर दिया--रही हागी, हूजूर!

दिग्विजयनाथ--शास्त्रीजी, आप तो ऐसी आवाज में बोलते हैं, मानो बाल-ब्रह्मचारी ही हों। उस चलो के बच्चा कब होगा? वह तो नेता थी! पता नही, उसने आपकी पुत्री को पढ़ाया या स्वयं आप से शिक्षा ली थी? होगा विधुर जीवन से यह रसाभास अच्छा ही रहा। वह नेत्री अबकी एम पी बनेगी। अब तो भाई, सदा कांग्रेस का राज्य रहेगा। बनिए एम. पी । बीबी भी एम पी., शौहर भी एम. पी.। हाँ, तो कब होगा?

शास्त्रीजी का चेहरा लज्जा से कुछ विचित्र प्रकार का बन गया। बात सच थी। अब प्रगति के पुजारी शास्त्री जी सर्वत्र विधवा-विवाह के सुधार स्तम्भ बनकर काम निकाल रहे थे। किन्तु वास्तव में विवाह बाद मे हुआ था। पहले तो शचीरानी शास्त्रीजी की पुत्री को पढ़ाने के लिये ही आई थी।

दिग्विजयनाथ की आँखें कुछ-कुछ लाल थीं। मस्ती के स्वर मे बोले--न बताइए, मिठाई तो खाऊँगा ही। क्या करूँ? कोई कायदे की मिलती नहीं, नही तो रस का कुछ-कुछ पवित्र आनन्द पा सकूँ। कभी-कभी सोचता हूँ, क्यों न लड़कियो का कॉलेज खोल दूँ? सरकारी सहायता मिलते क्या देर लगती है? नाम का नाम, दाम का दाम, काम का काम! पर इस खटराग में कौन फँसे?....बाजारू माल चाहे जितना देखकर लो, रहता अस्वास्थ्यकर ही है, होगा। उन्होंने एक लम्बी साँस खींची। फिर बोले--आपका कॉलेज, सुनता हूँ, बहुत कमजोर हो गया है?

शास्त्रीजी--लड़के हेमचन्द्र के इशारे पर चलते हैं। रास्ते में, बाजार में वह भडकाता रहता है। वे भागते रहते हैं। आपके गाँव में संस्था है ही। न घोडा दूर, न मैदान! पर्चो ने बदनामी भी कर दी है। मैं भी सोचता हूँ, जब तक चलेगा चलाऊँगा, नहीं तो सारा समय देश के काम मे लगाया करूँगा। अब वह समय आ गया है, जब सारा समय राष्ट्रसेवा में ही लगाया जाय।

कुछ देर विविध बातें हुई। शास्त्री जी चले गए। दिग्विजयनाथ उठे

और सुलाचना के पास पहुँचे बोले हेमचन्द्र की पत्नी न अफीम खाकर कल रात आत्महत्या कर ली। तू उसके पीछे पागल थी, तेरी भी यही हालत होती या नहीं, कौन कह सकता है?

यह कहकर वह चले गए। किन्तु सुलोचना स्थिरचित्त न रह सकी। राजपती के अतीव भोले और स्वस्थ सुन्दर मुख की एक धुँधली झलक उसे मिली थी, उसका एक अस्पष्ट-सा चित्र उसके मानस-चक्षुओं के सामने घिर गया, और न जाने कहाँ से उसके अन्तर में यह विचार उद्‌भूत हुआ कि वैसी सौन्दर्य-प्रतिमा अकारण प्राण नहीं दे सकती। वह हेमचन्द्र के घर की ओर चल पड़ी।

हेमचन्द्र दुनिया भर की जाँच-पड़ताल से थका अब फुर्सत में हुआ था। शव पोस्टमार्टम के लिए चला गया था। हेमचन्द्र मारे व्यथा के साथ न जा सका था। दाह के समय उसे पहुँचना था। उसी की तैयारी कर रहा था। घर मे और कौन होता? वंश के कुछ अभिन्न व्यक्ति शव के साथ शहर गए थे। अस्त-व्यस्त और विशृंखल हेमचन्द्र बैठा राजपती का पत्र पढ रहा था कि सुलोचना आ पहुँची। वह उठने को हुआ। सुलोचना ने रोका—आज यह सब नहीं! ईश्वर ने वज्रपात ही कर दिया। सच कहती हूँ जब से खबर पाई, हृदय फटा जा रहा है। आपके जीवन की तो सबसे अमूल्य निधि ही चली गई। उसके आँसू छलछला आए—कुछ पत्र आदि लिख गई हैं?

हेमचन्द्र ने पत्र सुलोचना के हाथ में रख दिय। बोला—लाश शहर गई है। जाना है। अब. ..

सुलोचना—अब सारा दायित्व मुझ पर है। कार है ही। वह पत्र पढने लगी।

पत्र पढना शुरू करते ही उसकी आँखों में आँसुओं का जो अनवरत प्रवाह प्रारंभ हुआ, वह पत्र के अन्त के सुलोच.....शब्दांश पर जाकर रुक गया।

हेमचन्द्र को बोलना पडा—सारा पाप मुझ पर है। मैंने पशु की भाँति उस देवी को पीटा था, अपशब्द कहे थे। खैर, सारा जीवन प्रायश्चित्त के लिए पडा है।

सुलोचना अब कुछ प्रकृत रूप में आ चुकी थी। बोली—कहते हैं, प्रम

आध्यात्मिक वैश्वानर है। उसका जलना ही शीतल होता है, उसका खोना ही पाना होता है, उसकी पिपासा ही तृप्ति होती है।

हेमचन्द्र–मुझे आश्चर्य है कि प्रेम के सम्बन्ध में तुम्हारे विचार अभी पूर्ववत् ही है। मैंने तो तुम्हें खोया, राजपती को खोया। इसलिए, मैं तो प्रेम से जल उठा हूँ।

सुलोचना–आप कहें कि मुझे खो दिया, किन्तु मै तो आपको नहीं खो सकी, न वही। इस घटना ने तो इस धारणा को और भी अधिक पुष्ट कर दिया है कि प्रेम मृत्यु से भी अधिक शक्तिशाली होता है।

□□□

हड़ताल का दिन करीब आता जाता था। मिस्टर रॉबिंस हड़ताल से उतना न डरते थे, जितना बदनामी और विशेषकर मजदूरों की बदल जाने वाली प्रवृत्ति से। प्रति मजदूर दो रुपए मासिक काटकर उन्होंने वाचनालय खुलवाया था, जिसमें 'पॉयनियर', 'हिन्दुस्तान' जैसे पत्र आते थे। नाइट-स्कूल था, जिसमे अंग्रेजी पढाई जाती थी। पुस्तकालय का प्रबन्ध किया गया था, जिसमे महात्मा ईसा, सेंट जॉन, सेंट टॉमस, सेंट ऑगस्टाइन, सेंट फ्रांसिस प्रभृति सतों से सम्बधित पुस्तकें सभी को सुलभ हो सकती थीं। यहाँ मत्ती रचित सुसमाचार, यूहन्ना रचित सुसमाचार जैसी पुस्तिकाएँ बिना मूल्य के वितरित होती रहती थीं। एक होम्योपैथिक चिकित्सालय खुलवाया था, जिसके सुचारु संचालन के लिए उन्होंने अपने साले मिस्टर स्टीवन मसीह एम. बी बी. एस. एच. को चलती प्रैक्टिस से हटाकर बुलाया था और चार सौ रुपए मासिक के वेतन पर ही लगा दिया था। इन सब श्रमिक हितकारी कार्यो ने मिस्टर रॉबिन्स और उनके स्वामी की ख्याति बढ़ा दी थी, जिसका सम्यक तथा सचित्र प्रकाशन पीटर्सन के पत्र करते रहते थे। राजपुर में एक चर्च की स्थापना भी उन्हीं के सद्प्रयत्नों से हो गई थी, जिसके बिशप फादर आइवन, जिन्हें उच्चारण के राष्ट्रीयकरण के कारण फादर इवान कहा जाता था मिस्टर रॉबिंस की तुलना प्राय: सर रॉबर्ट ओवेन से किया करते थे। इन बहुमुखी सेवाओं के कारण ही वह प्रदेश के बड़े शक्कर मिलो में से एक

के प्रायः सर्वेसर्वा बन सके थे। पीटर्सन उन्हें अपने एक दर्जन मैनेजरों मे सबसे योग्य मानते थे और बडा सम्मान करते थे। मिस्टर रॉबिंस ने जहॉ कही काम सम्हाला था वहाँ तनिक भी अशांति न हुई थी।

किन्तु आज उनकी अर्जित ख्याति का प्रासाद ध्वस्तकारी तूफानों के बीच खडा मालूम होता था। वह जानते थ, सारा दारामदार मजदूरों पर है, जा जल्दी पिघल जाते हैं। और, यहीं पर उनकी आशा-पंछिनी का नीड़ भी था।

इधर हेमचन्द्र की श्रमिक-सस्था में दलबन्दी के कुछ आसार दिखाई देने लग थ। हेमचन्द्र दूसरे दल के प्रचार के अनुसार नास्तिक तथा वामपथी हो गया था। जब वह कहता-ईश्वर मानवता की विवशता का शिशु है। मानव की मजबूरी के लिए उसका अस्तित्व उपयोगी हो सकता है, पर सत्य नहीं। ईश्वर तथा आत्मा मानवीय परिस्थितियों मे उद्भूत काल्पनिक तत्त्व हैं, जो मानव की आलस्यजन्य निष्क्रियता तथा तर्कशून्य अंधश्रद्धा का अस्तित्व प्रबलतर बनाने में सहायक होते हैं। ईश्वर तथा आत्मा-विषयक धारणाओ का क्रमिक विकासजन्य परिणाम इसका साक्षी है कि ये अशाश्वत हैं, मानवीय वृत्तियां हैं, और अस्तित्व-रहित होने के कारण काल्पनिक हैं। धर्म की, ईश्वर की, आत्मा की ओट लेकर युगों-युगों से क्रमशः राजा, सामन्त तथा धनिक अज्ञान के अंधकार में पड़ी जनता को शोषित करने चले आ रहे हैं।.....मैं यह नहीं कहता कि ईश्वर को ठुकरा ही दो, धर्म को अफीम की भाँति उठाकर फेंक ही दो, पर सत्य ईश्वर तथा धर्म के अनुकूल तर्क नही प्रस्तुत कर सकता। ईश्वर तथा धर्म ने सहस्रों वर्षो से मानव-मानस को प्रभावाक्रांत कर रखा है, और उन्हें एक झटके में नहीं फेंका जा सकता। पर सत्य ऐसा ही है।'' तब कोई-कोई तर्क भी कर बैठता था।

यही नहीं, अब मिस्टर रॉबिन्स ने पादरी इवान को भी प्रभाव डालने का आदेश दे दिया था। इधर फैक्ट्री में जो सनातनी, आर्यसमाजी, ईसाई और मुसलमान थे, उनके नेताओं को साम, दान, दण्ड, भेद से अपने अनुकूल बना लिया गया था। कुछ-कुछ आशा होने लगी थी कि हड़ताल शायद पूर्ण सफल न हो सके।

राम-राम करके हड़ताल का दिन निकट आ गया। परसों ही वह दिन था। मिस्टर रॉबिंस सदलबल अपने प्रचार में व्यस्त थे। सभा का आयोजन हुआ था। प्रातः सभी मजदूर इस आशा से कि कोई आश्वासन मिलेगा, आए

थे बीमारी के कारण हेमचन्द्र न आया था, भाषण हाल का था। शर्बत पिलाया जा रहा था। श्वेत श्मश्रु तथा धर्म-परिधान से युक्त तन के आनन पर शान्ति के भार से उत्पन्न गम्भीरता से विलसित पादरी इवान के आते ही सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। कुछ देर बाद उनका लम्बा भाषण हुआ, जिसका निचोड़ कुछ ऐसा था–यह जो हड़ताल हो रही है, धर्म के विरुद्ध है। बाइबिल में कहीं नहीं लिखा कि हड़ताल करो। शायद वेद-पुराण और कुरान में भी एसा नहीं लिखा। ईश्वर ने हमें इस दुनिया में काम करने के लिए भेजा है हड़ताल करने के लिए नहीं। हड़ताल तो निकम्मों की चीज है। अपने मालिक की सच्ची सेवा करना ही धर्म है। यह हेमचन्द्र नास्तिक कम्युनिस्ट है। यह चाहता है, भारत में भी रूस हो जाय। रूस में कोई भगवान को नहीं मान सकता, कोई मन्दिर-मस्जिद-गिर्जे नहीं बनवा सकता, कोई सरकार के खिलाफ चूँ तक नहीं कर सकता, कोई अधिक धन नहीं कमा सकता, कोई सम्पत्ति नही जोड़ सकता। वहाँ बच्चे पैदा होते ही सरकार द्वारा छीन लिए जाते हैं। वहाँ भगवान के भक्त मार डाले जाते हैं, अधिक धन कमाने वाले कत्ल कर दिए जाते हैं। क्या ऐसा होना चाहिए? रूस एक असभ्य देश था, वहाँ हो गया। यहाँ कैसे हो सकता है? हेमचन्द्र भगवान को नहीं मानता, पैगम्बरों को नही मानता। प्रभु ईशु, राम, कृष्ण, बुद्ध, मुहम्मद, तुलसीदास, दयानंद को नहीं मानता। ऐसे आदमी की बात तुम लोग क्यों मानते हो? जानते हो, पीटर्सन अरबों का आदमी है, गुस्सा हो जायेगा, तो मिल बन्द कर देगा। तुम्हारी रोजी चली जायेगी, भूखों मरने लगोगे। उसका क्या होगा? एक दर्जन मिलो में एक मिल न सही। तब क्या कंगाल हेमचन्द्र तुम्हें खाने को दे देगा? तुम्हारे लड़के-बच्चे भूखो तड़पेंगे। तुम्हें कितना पाप होगा? शैतान का बताया रास्ता नरक की ओर ले जाता है। ईश्वर के बताए रास्ते पर चलो। ईश्वर के नाम पर मैं तुम से, तुम्हारी भलाई के लिए, कहता हूँ कि हड़ताल न करो।'' भाषण के दौरान में दो-तीन बार उनके आँसू आए, विशेषकर भाषण के अन्त पर तो हिचकियो का ताँता ही लग गया।

फादर इवान के भाषण का गहरा असर पड़ा। मजदूरों में चर्चा छिड़ी। एक बोला- पादरी साहब कहते तो ठीक हैं, पर बोनस-चन्दाबन्दी वगैरह पर मालिकों की तरह कन्नी काट जाते हैं।

दूसरा–भैया, हम गरीब रॉबिन्स साहब से क्या खाकर लड़ेंगे? देखना, हेमचन्द्र बाबू ऐन हड़ताल के दिन भी बीमार ही बने रहेंगे।

तीसरा–चुप रहो। हेमचन्द्र बाबू निर्भय तथा ईमानदार हैं। वह पादरी जिसका खाता है, उसी की बजाता है। भाड़े का एजेन्ट है।

किसी की अनुभवपूर्ण आवाज आई–''सभा-सोसाइटियो मे चख-चख नहीं की जाती।'' सभी चुप हो गए। मुड़कर देखा, कहने वाला पीटर था। पिता मेहतर थे, जो मरने के कुछ पहले ईसाई हो गए थे। यह दर्जा तीन तक पढ़ा था, बालों में काफी तेल डालता था, मूँछ नुकीली कटाता था, फिल्मी गीत गाता था और मजदूरों का छोटा-मोटा नेता था। तवे के पेंदे की तरह चेहरा, जिस पर अफगान-स्नो के ऊपर पाउडर का छींटा दे दिया गया था, और चेचक के दाग, जो दवाएँ रगड़ने के बावजूद मिटे न थे–पीटर को विचित्र बनाए थे। चेहरे पर 'एक्टर-टाइप' मुस्कान तो गजब ही किए रहती थी।

सभी ने सुना–शास्त्रीजी आ रहे हैं। कांग्रेस के बड़े भारी नेता हैं। पाँच बार जेल जा चुके हैं। अब तो इन्ही का राज्य है। चुनाव में खडे होंगे। बड आदमी हैं।

थोड़ी देर परम्परा-पालन का कृत्रिम ढोंग हुआ और पीटर भाषण देने को बुलाए गए। वह उठे और स्टेज तक गए भी, पर बोल एक शब्द भी न सके। गला ही न खुला। बहुत हँसी हुई। फिर शास्त्रीजी का घण्टे-भर लम्बा भाषण चला, जिसमे तर्क के आधार पर वैज्ञानिक तथा धार्मिक दृष्टि स हड़ताल की भर्त्सना की गई। शास्त्रीजी ने विश्लेषण किया–स्वराज्य प्राप्ति के पूर्व हड़ताल, असहयोग और सत्याग्रह के प्रयोग देश के उद्धार क साधन थे, क्योंकि तब हमें किसी भी तरह विदेशी शासन हटाना था। किन्तु अब हमें उत्पादन बढ़ाकर राष्ट्र-निर्माण करना है। देखो, विधान मण्डलों के निर्वाचन होने जा रहे हैं। अब हम स्वतंत्रता के युग में साँसें ले रहे हैं। अब हड़ताल और सत्याग्रह करना राष्ट्रदोह है। इस तर्क का भी काफी प्रभाव पड़ा।

समा समाप्ति के निकट आ गई। एक व्यक्ति उठकर बोला–''मुझ भी पॉच मिनट कुछ कहने को मिल जायँ।'' लोगो ने उस व्यक्ति पर ध्यान दिया। साधारण मारकीन की कुछ सफेद कमीज और पाजामा पहने एक

तरुण दिखाई पडा जो कुछ देर मे ही युवक बन गया सभापति मिस्टर रॉबिंस जब तक कुछ निर्णय करें, तब तक भीड़ से कुछ कण्ठों की सम्मिलित आवाज आई–"हाँ, मिस्त्री भी बोलें।" यह ध्वनि बढ़ती ही गई। मिस्टर रॉबिस ऐसा उजड्डपन सहन न कर सकते थे, किन्तु आज की बात दूसरी थी। उनके मुख से भी निकल पड़ा–पाँच नहीं, तीन मिनट बोल लो। कायदे से बोलना। और उस युवक ने धुआँधार भाषण प्रारम्भ कर दिया। उसके भाषण का तत्त्व था–मजदूर भाइयो, पादरी साहब और शास्त्रीजी ने देश–विदेश, धर्म–अधर्म आदि सब पर तो प्रकाश डाल दिया, लेकिन बोनस की समस्या तो दूर रही, बोनस शब्द तक इनकी जबान पर न आया। आखिर ऐसा क्यों है? आज के रास्ते राजनैतिक युग में शास्त्रीजी जैसे नेताओं की कमी नहीं है, फिर फादर के उपयुक्त स्थान को गिर्जाघर है, उपयुक्त काम उपदेश देना है, हड़ताल से उन्हें क्या प्रयोजन? हेमचन्द्रजी अस्वस्थ हैं, नहीं तो वह भी यहाँ आते। तब ये लोग ऐसी बे–सिर–पैर की बातें करके आप पर अपना असर न जमा पाते। मैं खुशी से यह बतला देना चाहता हूँ कि हड़ताल को ऐसे हथकण्डों से असफल करने पर परसो के बाद ही यूनियन मिल–मालिकों पर बोनस की कानूनी रकम हजम करने का दावा करेगी। बरसों पहले का डकारा गया रुपया भी दावे में शामिल किया जाएगा। चन्दा क्यों लिया जाता है? ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए? या अपने साले–सम्बन्धियों को खिलाने–पिलाने के लिए? इसका उत्तर भी किसी ने नहीं दिया।

मिस्टर रॉबिन्स ने घण्टी बजाई किन्तु वक्ता ने जैसे उसे सुना ही नहीं। पीटर की ओर से कुछ आवाजें आईं, पर भीड़ की 'चुप–चुप' में वे डूब गईं। युवक बोलता रहा–"गरीब के सामने स्वराज्य और स्वतत्रता, धर्म और नैतिकता, तर्क और दार्शनिकता की चर्चा बाद में करनी चाहिए, पहले उसके पेट की चर्चा करनी चाहिए। यहाँ आपको बहकाकर भुलावा दिया जा रहा है, आश्वासन नहीं। समय चूकि पुनि का पछिताने? आप अपने निश्चय पर अटल रहिए, भाड़े के टट्टू असफल हो जाएँगे। मैं हेमचन्द्रजी से मिला था, उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है। परसों चाहे वह जिएं या मरे, यहाँ अवश्य आएँगे। हड़ताल अवश्य होगी। भाड़े के टट्टू बहुत–कुछ करने की कोशिश करेंगे। देख लेना, वे तोड–फोड़ करके हेमचन्द्र को गिरफ्तार कराने की कोशिश भी

करेंगे। उन पर चोट तक करने की हरकत करेंगे। पर मैं ऐलान करता हूँ कि यदि अन्याय को ही आगे बढ़ाया जायेगा, हेमचन्द्र का अनुचित रूप से कोई भी कष्ट पहुँचाया जायेगा, तो यह मिल यहाँ न रह पाएगा, और मिस्टर रॉबिंस भी पछताकर रह जाएँगे....।'

मिस्टर रॉबिंस का धैर्य समाप्त हो गया था। उनकी घण्टी की कोई समाअत ही न की गई। तैश की आखिरी मंजिल पर पहुँच गए। उठकर गरज पड़े–"गधे, बैठ जा।"

तड़ाक से एक थप्पड़ उनके मुँह पर लगा। वह स्टेज से जमीन पर गिर पड़े। शास्त्रीजी मंच से उतरकर भीड़ को बचाते हुए सबसे पहले सरक गए। पादरी इवान उनके पीछे थे। सभा में गड़बड़ी मच गई। पीटर का दल युवक की ओर दौड़ा। अन्य मजदूरों ने मनोरंजन करना प्रारंभ कर दिया। पीटर के दल से युवक के दल का कुछ देर तक संघर्ष हुआ। छह–सात आदमी धराशायी करके वह निकल गया। पुलिस के सिपाही निरपेक्ष भाव से अब तक खड़े थे। अब वे लाठी–वर्षा करने लगे। मिस्टर रॉबिन्स स्टेज के नीचे अर्द्धचेतनावस्था में पड़े थे। उनका शायद किसी को ध्यान ही न था।

भीड़ भाग चली। कितनों के सिर फूटे, कितने पीठ सहलाते चले जा रहे थे, कितने हँस रहे थे और कितने ताज्जुब कर रहे थे–यह जवान बड़ा ही कसीला निकला! साहब तो कुछ दिन मुँह न दिखायेंगे। पादरी साहब और शास्त्रीजी मजे में रहे, जो न बोले। पीटर की नाक फूट गई है, बेचारा नेता जो है। एक नेता शास्त्रीजी हैं, जो दुम दबाकर नौ–दो ग्यारह हुए, एक पादरी साहब हैं, जो उनके पीछे थे, एक पीटर हैं जो अस्पताल पहुँच गए होंगे। जो भी हो, जवान था कसदार!

एक बोला–जिसके एक कटाप लगा, धूल चाट गया। डपट में ही कितने जमीन देख गए! था कौन?

एक की आवाज आई–भगवान भेज देते हैं। नहीं तो अन्याय कैसे रुके? सबको बहलाए ले रहा था। कहीं बजरंग बली न हों। तुम हेमचन्द्र बाबू को समझते क्या हो? देवता इष्ट हैं उन्हें!

□□□

राजपती जीवित रहकर जो न पा सकी थी, वह मरकर सरलता से पा गई। उसकी अभीप्सित वस्तु–हेमचन्द्र का प्रेम–उसे मिल गया। हेमचन्द्र अपनी ही दृष्टि में गिर गया था। उसे सदैव राजपती के पत्र के मार्मिक स्थल झकझोरे रहते थे। चिंता में बीमार हो गया था। किन्तु मन में शीघ्र अच्छे होने की आशापूर्ण कामना विद्यमान थी। इसका कारण मिल की होने वाली हड़ताल थी।

ब्रजेन्द्रशंकर ने आकर सूचना दी–"आज उनकी सभा काफी सफल रही। किन्तु अन्त में मुझे भी अवसर मिल गया। मैंने पर्दाफाश किया। श्रोताओं की भावना कुछ बदल गई।" इसके बाद उसने झगडे का सारा किस्सा बताया। हेमचन्द्र को सन्तोष न हुआ। बोला–"तीन बुरे शब्द ही सुन लेते।"

ब्रजेन्द्रशंकर–क्यों सुन लेता? प्राय: जिनकी बाँहों में बल नहीं होता, वे अहिंसा और नीति तथा अवसर और लाभ की ओट मे अपनी दुर्बलता छिपा लेते हैं। अहिंसा एक महान मानवीय विभूति है, पर उसके सर्वसामान्य प्रयोग का दिन अभी बहुत दूर है। एक दिन ऐसा आएगा, जब मनुष्य हिंसा और संघर्षों से ऊबकर अहिंसा और शांति की शरण लेगा, क्योंकि अन्ततोगत्वा मानवीय प्रकृति शान्तिमय है। किन्तु अभी उसके आने में कितनी देर है, कहा नही जा सकता।

हेमचन्द्र–अब परसों तुम वहाँ न रह पाओगे। तुम भावुक हो, शान्ति से काम लेना सीखो।

ब्रजेन्द्रशंकर–परसों मैं वहाँ न रहूँगा, तो कोई बात नहीं है। आप तो रहेंगे ही। उन सामान्य मजदूरों मे रॉबिन्स को पिटते देखकर एक अजीब साहस आ चुका है। मैं यदि रहूँगा, तो मिल में आग लगवा दूँगा। आप अब मार्क्स को देवता मानने लगे हैं, कल गाँधी आदि को मानते थे। मैं अपने अतिरिक्त इन सबको अपूर्ण मानता हूँ। समय देखकर अपनी आत्मा के आधार पर काम करता हूँ। आत्मा कोई सिद्धान्तवादी तत्त्व नहीं है, न वह अहिंसा का पुतला है, न हिंसा का दीवाना, न असत्य पर फिदा है, न सत्य पर आसक्त, वह समय पर जो भी उचित दीख पड़ता है, बता देता है। न वह अनन्त है, न ईश्वर, न सबमें एक, न सर्वत्र एक, वह विवेक है। मै उसी को मानता हूँ।

हेमचन्द्र–मैं मार्क्स को एक विशिष्ट प्रकार का महामानव मानता हूँ। बुद्ध या ईसा का-सा पवित्र जीवन उसका न था, इनकी-सी साधना उसमें न थी। शंकराचार्य का ज्ञान या प्लेटो की दर्शनिकता भी उसमें न थी। पर वह एक गम्भीर चिन्तक और मनीषी था। उसने जो लिखा है, वह प्रत्यक्षतः बुद्ध या ईसा, प्लेटो या एरिस्टॉटल या कांट के लिखे हुए से प्रतिशत अधिक सत्यांश रखता है। उसका लिखा सभी कुछ पूर्णतः ठीक है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। किन्तु उसने जो लिखा है वह अधिकांश यथार्थ एवं सांसारिक है। वह बहुत चरित्रवान न था। जो व्यक्ति चिड़चिड़ा हो, पैसे के आधिक्य में माँस-मदिरा और धूम्रपान में मस्त रहे, और पैसे के अभाव में पुत्री को मरता देखे, उसे बाह्य जीवन की दृष्टि से संयमी नहीं कहा जा सकता। किन्तु उसने मनुष्यता को बाहर से खूब गौर से देखा था, और इसी ने उसे इतिहास के महत्तम पुरुषों में प्रतिष्ठित कर दिया है। मैं नहीं मानता कि मार्क्स की सभी बातें अभी स्वीकार कर ली जायँ। जब तक मनुष्य में दुर्बलताएँ हैं, ईश्वर और धर्म उसके लिये अफीम की अपेक्षा अमृत अधिक रहेंगे। कल्पनाप्रिय मनुष्य को प्रत्यक्ष-अनुभूत तत्त्वों मात्र से सन्तोष नहीं हो सकता। अतः अप्रत्यक्ष त॰वों को, चाहे वे बाह्यतः असत्य ही क्यों न हो, तिरस्कृत कर देने से विशेष सफलता नही मिल सकती।

ब्रजेन्द्रशंकर–इस दृष्टि से, मार्क्सवाद थोड़ा-सा अमनोवैज्ञानिक कहा जा सकता है। होगा! मै चलूँ। शायद पुलिस यहाँ भी पधारे। वैसे, कौन कहाँ आता-जाता है? देखिए, यदि आपस कोई कुछ पूछे तो कह दीजियेगा कि मै उक्त युवक को कतई नहीं जानता। वहाँ हरिश्चन्द्र का स्मरण न कर बैठिएगा। यह कलियुग है, कलयुग है।

हेमचन्द्र–अच्छा! अवसर आने पर मैं पिस्तौल भी ले सकता हूँ। तुम घबराना मत। परसों जो-जो होगा, सब मुझे ज्ञात है। फिर भी, शायद कानून मुझे ही पकड़ ले।

ब्रजेन्द्रशंकर–मे आपको निकलवा लूँगा। जब कानून हमारा गला घोंटता है, तब हम भी कानून का गला घोंट सकते हैं। इसमें अन्याय नहीं है। कानून हमारी गर्दन रेतता है, तब हम क्यो न उसकी गर्दन रेतें? और जितना हो पाता है, सभी रेतते हैं।

हेमचन्द्र–देखा जाएगा।

ब्रजेन्द्रशंकर चला गया। हेमचन्द्र सुलोचना, राजपती और हड़ताल विषयक त्रिवेणी में गोते लगाता रहा। थोड़ी देर में ही उसे नींद आ गयी।

उधर मिस्टर रॉबिन्स जब स्वस्थ होकर उठे तो कपड़े बदलकर केस के चक्कर में पडे रहे। किन्तु वह स्वयं जानते थे कि अज्ञात तथा अपरिचित युवक के आचरण से कानूनन कोई विशेष लाभ न उठाया जा सकेगा। हाँ, उसके नाम वारंट निकलवा दिया। वारंट में उसके मिस्त्री होने की गन्ध आती थी।

फिर उन्होने हड़ताल को न टलने वाली बला समझते हुए अपना अन्तिम अस्त्र साधा। मरता क्या न करता? पीटर से अस्पताल में मिले। वह दूसरे दिन आ भी गया। बोले-परसों वह हत्यारा न आ सकेगा। वारंट निकलवा दिया है। गिरफ्तार होने नही आएगा। तुम लोग हुल्लडबाजी में मिल के दस-पाँच सीसे, दो-एक दरवाजे, दीवारों की दस-बीस ईंटें तोड़-फोड़ देना। दो-चार ईंट-पत्थर इधर-उधर फेंक देना। बाकी सब मैं ठीक कर लूँगा। पुलिस काफी रहेगी। लेकिन अपने लोगों को डरने की आवश्यकता नहीं। वे मेरे इशारे पर सब काम करेंगे। पहले ही सब साध लिया है।

पादरी इवान-यह ठीक किया। हमारे ईसाई मजदूर इस हिन्दू-हड़ताल से दूर रहेंगे। अखबार में समाचार छपने को भेज देना कि कुछ मजदूरों ने हुल्लड़बाजी की। क्यों रॉबिन्स, इस शैतान हेमचन्द्र को उसी दिन जेल क्यों नहीं भिजवा देते? बहाना तो रहेगा।

मिस्टर रॉबिन्स-दारोगा को इस काम के लिए मैं अलग से दे रहा था, वह न माना। अब समय कुछ बदल गया है। दारोगा अपनी नौकरी को भी डरता है और प्राणों को भी चाहता है।

पीटर-तो सर, हम लोगों को काम निश्चित हो गया न? उसके बाद हम काम करेंगे। कुछ खर्च-पानी के लिए अगर...।

मिस्टर रॉबिन्स ने कुछ नोट निकाल कर पीटर की ओर बढ़ा दिए। वह सीधा ठेके की ओर चला जहाँ उसके साथी उसका इन्तजार कर रहे थे। शाम हो गई थी। फादर बोले-आज दिन भर हड़ताली दौड़ते रहे। हेमचन्द्र में जादू-सा मालूम पड़ता है। सुनते हैं, नब्बे प्रतिशत से अधिक मजदूर हडताल करेंगे।

मिस्टर रॉबिन्स-जहाँ दस-बीस गिरफ्तार हुए, सौ-पचास घायल,

दा-एक मृतप्राय, वहाँ अधिकाँश रास्ते पर आ जाएँगे। लेकिन मिस्टर पीटसन ने टेलीफोन किया है कि बोनस दे सकते हो। यदि आवश्यकता समझूँगा तो दे भी दूँगा। मालूम पड़ता है, बिना दिए काम न चलेगा। अभी अपनी हार बचाये हूँ। देखो, कब तक बचती है।

पादरी इवान--अब कुछ समय बाद, मालूम पड़ता है, सारे संसार म कॉम्युनिज्म फैल जाएगा, सभी जगह रूस बन जायेगा। उन्होंने दीर्घ नि:श्वास छोड़ा।

मिस्टर रॉबिंस--ऐसा नहीं होगा। अमेरिका हमारे धर्म तथा मनुष्यता का रक्षक जो है। यदि कभी सौभाग्यवश तृतीय महायुद्ध हुआ, तो देख लेना व्यवसाय और धर्म के मार्गों का यह भयंकर विनाशकारी रोड़ा कम्युनिज्म समाप्त हो जायगा। रूस में दूसरी ही सरकार बनेगी और सभ्य ससार पर छाया शैतानी कम्युनिज्म का बादल एकदम हट जायेगा।

पादरी ने सर्वशक्तिमान से प्रार्थना की कि वह पवित्र दिन शीघ्र आये और चर्च की ओर चल दिए।

□□□

सुलोचना घर में बैठे-बैठे परेशान हो जाती थी। हृदय मे शान्ति न थी, हेमचन्द्र का ध्यान सदा विशृंखल किये रहता था। रणंजयनाथ को अब अवकाश न मिलता था। प्रदेश के पहाडी भागों में डाकुओं का आतंक था। उस कार्य मे व्यस्त थे। बहुत कम आते थे। सर दिग्विजयनाथ कॉंग्रेस मे शामिल हो गय और उन्होंने चुनावो के लिए पार्टी की ओर से ससद का टिकट भी पा लिया। शास्त्रीजी को प्रान्तीय सदन का ही टिकट मिल पाया। अत: दोनों मं राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता हो गई थी। सर दिग्विजयनाथ इधर-उधर जनसेवा के कार्यो, भाषणादि तथा प्रीतिभोजों में व्यस्त रहते थे। रही सुलोचना, वह अकेले पड़ी कालिदास, शेक्सपीयर, सूर, मिल्टन आदि में सिर खपाया करती थी। पर मन न लगता था। एकाकीपन वेदना को बढ़ाता है।

सुलोचना राजपती की मृत्यु के बाद हेमचन्द्र का विशेष ध्यान रखने

लगी थी। नेता होने के कारण दिग्विजयनाथ ने एक विज्ञप्ति राजपुर मिल के हडताल के सम्बन्ध में प्रकाशित कराई थी, जिसमें श्रमिकों के प्रति शाब्दिक सहानुभूति पर्याप्त मात्रा में प्रकट की गयी थी। मिस्टर गॉबिन्स का बुरा हाल था। इस दृष्टि से शास्त्री जी से दिग्विजयनाथ बाजी मार ले गए थे। सुलोचना को सब-कुछ ज्ञात था।

हड़ताल का दिन आया। सुलोचना भी मिल पहुँची। देखा, पुलिस का अच्छा प्रबन्ध है। उसे देखते ही दारोगाजी, जो शेर की भाँति टहल रहे थे भीगी बिल्ली बन गए। उसने एकान्त में ले जाकर समझाया—यह ईसाई मैनेजर बड़ा फिरकापरस्त और अन्यायी है। इसके कहने के चक्कर में न आ जाना। मजदूर बेचारे ठीक लड़ाई लड़ रहे हैं। तुम्हारी हमदर्दी उन्हीं के साथ होनी चाहिए। फिर, तुम्हें तो अपने कर्तव्य के प्रयोजन, शान्तिरक्षा से मतलब।

हेमचन्द्र जानता था कि भाड़े के टट्टू हुल्लड़ अवश्य करेंगे। अतः उसने भी मजदूरों को एकत्रित करके भाषण दिया। बताया कि हड़ताल क्यों जारी रखी जाय। समझाया—यदि आठ-दस दिन के अन्दर समझौता न हुआ, तो हम मुकदमा दायर कर देंगे। हमें अपने में तो चन्दा मिलेगा ही, बाहर से भी मागेंगे। आशा तो ऐसी है कि समझौता हो जायेगा। सारा निश्चय आप पर है। आपकी जरा-सी भी कमजोरी सब किए-कराए पर पानी फेर सकती है। उसने गुण्डेबाजी के हथकण्डों का विवेचन प्रस्तुत किया। चेतावनी दी कि कोई मजदूर मिल के अधिक निकट जाए ही नहीं। दस-बीस आदमी फैक्ट्री चलाएँ, तो चलाएँ। हमारी हड़ताल सफल होकर रहेगी।

सभा में सुलोचना भी बोली—प्रतिक्रियावादी पूँजीवाद संसार की संस्कृति को नष्ट करने पर तुला है। साम्राज्यवाद पूँजीवाद का बच्चा है। इन बाप-बेटों ने संसार को नरक बना रखा है। किन्तु अब पूँजीवाद के दिन लद गए, मुर्दे में जान डालने की असफल चेष्टा में पूँजीवाद आरक्त साम्यवाद को आमन्त्रित कर रहा है, अपनी कब्र स्वयं खोद रहा है। मैंने इस मिल का-सा अंधेर कहीं नहीं देखा। न बोनस देते हैं, न और कुछ। ऊपर से ईसाई धर्म के प्रचार के लिए दो रुपए चन्दा खींचते है। ईसाई धर्म का प्रचार अपने पैसे से करें तो करें, जबरदस्ती पैसा क्यों लूटते हैं? उस पैसे का अधिकांश मालिक, मैनेजर तथा कुछ चुने हुए गुर्गों की जेबों में जाता है। आप पूरी ताकत से संघर्ष करिए। यह कल ही घुटने टेक देंगे या मिल बन्द करके

भाग खड़े होंगे। परिश्रम करने वालों को रोजी की क्या चिन्ता? आप डरिए नहीं। मैं आपकी लडाई में तन, मन, धन से भाग लूँगी। मुझे विश्वास है, मिस्टर रॉबिंस अक्लमन्दी का परिचय देंगे और यह संघर्ष समाप्त हो जाएगा।

मजदूरों में नया उत्साह फैल गया। पीटर वगैरह घूमते ही रह गए। बीस-बाईस आदमी ही पीटर के दल में थे। वे मिल क्या चलाते? ईसाई कार्यकर्ताओं में फादर इवान के झाँसे के बावजूद हड़तालियों के प्रति सहानुभूति बनी रही। वे तटस्थ ही नहीं रहे, हड़ताल में शामिल तक हो गए। फलस्वरूप मिल बन्द हो गया। मिस्टर रॉबिन्स बड़ी दुविधा में पड़े। पीटर्सन का भय भी था। अतः उन्होंने सायंकाल ही माँगें स्वीकार करके समझौता कर लिया। हेमचन्द्र की ख्याति और प्रतिष्ठा सौ-गुनी बढ़ गई।

सुलोचना वहीं थी। रॉबिंस के जाने के बाद बोली--पूँजीवाद के अस्तित्व को स्थिर रखने में पूँजीवादी हथकण्डो के साथ-ही-साथ हमारे श्रमिक-वर्ग में संगठन का अभाव भी सहायक बना हुआ है। देखिए, एक दिन में ही आ गया रास्ते पर यह हब्शी।

मुस्कराते हुए हमचन्द्र बोला--इसका श्रेय तुम को है।

सुलोचना--आप अब मजाक भी करने लगे हैं।

हेमचन्द्र--सुलोचना, क्या तुम मुझे अब भी चाहती हो? उसने उसका हाथ पकड़ लिया।

सुलोचना इस आकस्मिक अभियान का अर्थ न समझ सकी। उसकी आँखें नीचे झुक गई। हेमचन्द्र ने दुहराया--अबकी स्वर में एक आकुल व्यग्रता थी--बोलो, क्या नहीं चाहती हो अब मुझको? बिना जाने ही उसने सुलोचना के हाथ का पंजा और अधिक जोर से दबा दिया।

सुलोचना के मुख से निकल पड़ा--"पहले से अधिक!" हेमचन्द्र ने उसके होंठों की ओर अपने होंठ बढ़ाते हुए कहा--"सच"?

सुलोचना--सच। पर रुकिए तो।

हेमचन्द्र न रुका। सुलोचना लाल हो गई। हेमचन्द्र आवेग में था। सुलोचना ने अनुरोध की वाणी में कहा--यह शरीर, यह हृदय और यह आत्मा आपकी है। किन्तु ...प्रेम एक आध्यात्मिक वैश्वानर है.. ।

हेमचन्द्र रुक गया। उसे अपनी गर्वोक्तियाँ याद आई। आहत कण्ठ से बोला--सुलोचना, प्रेम को वासना की आँच से नहीं बचाया जा सकता, फिर

चाहे वह आँच शारीरिक हो या मानसिक। और वासना तो एक स्पृहणीय विकार है, निन्दनीय नहीं। ऐसा तुमने कहा था। फिर यह व्यवधान कैसा?

सुलोचना—तो आप मानते हैं कि मैं ठीक कहती थी और आप गलत? आप हारे और मै जीती?

मुग्ध हेमचन्द्र बोला—हाँ, यह सत्य है। तुम मेरी सब कुछ हो, मेरा जीवन, शरीर, आत्मा। उसने सुलोचना को खींचकर हृदय से लगा लिया। किन्तु सुलोचना ने अपने को छुड़ा लिया।

बोली—इतना आवेग क्यों? मैं तो आपकी ही हूँ!

हेमचन्द्र सन्न रह गया। बोला—मुझे क्षमा करना! अनुचित...

सुलोचना—ओ हो, आप तो रूठ गए। मै तो आपकी ही हूँ। समझ मे नहीं आता, क्या करूँ?.. आपका पत्र...। कहते हैं, प्रेम आध्यात्मिक अग्नि है। जब हमने आग लगाई है, तो आइए, कुछ जल भी लें। उसके आँसू निकल आए, और आगे कुछ भी कह सकने में असमर्थ हो गई। उसने देखा रोता हुआ हेमचन्द्र हिचकियों के बीच कह रहा था--अच्छा, मैं भी प्रेम की इस साधना में लगूँगा।

□□□

हड़ताल के सफल होने पर हेमचन्द्र प्रदेश के श्रेष्ठ श्रमिक-नेताओं में हो गया। उसका यूनियन राजपुर के सभी श्रमिकों का संगठन बन गया। कुछ मित्रों ने उसे कानपुर जैसे किसी बड़े स्थान को कार्यक्षेत्र बनाने का परामर्श दिया। पर वह नट गया—मैं गाँव में रहूँगा। ग्रामीण श्रमिकों की समस्या नागर श्रमिकों की समस्या से अधिक विषम है। भारतीय बौद्धिकता ने ग्रामों की जो उपेक्षा की है, वह नितान्त दुर्भाग्यपूर्ण है। भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। गाँव शब्द ही बड़ा प्यारा लगता है। शहर जितने ही बढ़ेंगे, मनुष्य उतना ही दुखी होगा, सभ्यता का सत्यत: उतना ही पतन होगा, शिष्टाचार की ओट में आडम्बर उतना ही अधिक बढ़ेगा, भ्रष्टाचार एवं व्यभिचार मे उतनी ही वृद्धि होगी, व्यक्ति और व्यक्ति के अनुरागपूर्ण सम्बन्ध में उतना ही ह्रास होता जाएगा। शहर मनुष्य की कृति है, ग्राम ईश्वर की, प्रकृति की।

शहर म आडम्बर तथा [illegible] स्फूर्ति है, ग्राम मे नैसगिक सरलता तथा सहज गति। शहर आधुनिक विज्ञान के उन्नत युग को दफनाने का इन्तजाम कर रहे हैं, ग्राम प्राचीन मानवता की मर्यादा को स्थिर रखने मे प्रयत्नशील है।

शास्त्रीजी की संस्था से उसे मौलिक अरुचि थी। समय-समय पर उसकी प्रेरणा से पर्चेबाजी हो जाती। अपने वेतन न मिलने का उसे खेद था, किन्तु जिस नीति को लेकर उक्त विद्यालय जन-शोषण करता था, उससे उसे नफरत थी। इधर शास्त्रीजी चाहते थे कि विद्यालय चले। वह जानते थ कि प्रभावशाली हेमचन्द्र के बिना विद्यालय सम्यक् प्रकार से नहीं चल सकता। अत: एक दिन हेमचन्द्र से मिले। हेमचन्द्र उन्हे नमस्कार न करता था। स्वयं किया। बोले—अरे बेटा, तुम तो इतना गुस्सा हो गए कि बोलते तक नहीं।

हेमचन्द्र--हमारे और आपके सम्बन्ध बहुत मधुर तो नही कहे जा सकते। मेरा वतन अभी तक नहीं मिला। समय पर पछताइएगा। चुनाव.. वह मुस्कराया।

शास्त्रीजी ने टोका--उसी के लिए तो मैं आज बोला। चलिए, अपना वतन ले लीजिए और काम करना शुरू कर दीजिए। मिल के वेतन से दस अधिक ले लीजिएगा।

हेमचन्द्र—नौकरी-चाकरी की बात बाद में होगी। वेतन का प्रश्न पहले है। पंकज जैसे चरित्रहीन व्यक्ति को अपने प्रिंसिपल बना दिया। वह कोई ऐसी हरकत करेगा कि विद्यालय मटियामेट हो जायेगा।

शास्त्रीजी--इन सब बातों को भी सोच लिया जाएगा। चलो, वेतन ले लो।

वेतन शगस्त्रीजी ने एक रुपया अधिक दे दिया। नौकरी की बात भी पक्की हो गई। हेमचन्द्र ने कुछ एडवांस भी लिए, तब तैयार हुआ। प्रिंसिपल पकजजी ही बने रहे। हेमचन्द्र को मिल की नौकरी न रुचती थी। उसने सन्तोष की साँस ली। श्रमिक-कार्यों के लिए अब उसे अधिक समय मिलने की सम्भावना हो गई

शाम का समय था। चरवाहे अपने पशुओं को लिए गाँव की ओर गाते हुए चले जा रहे थे, गाएँ रँभाती हुई दौड़ रही थीं, पशुओं के चलने से

उडती हुई धूल गोधूली की सार्थकता का मौन गान गा रही थी। इराई आध इराई गैर-जुते भूमिखण्ड को पूरा करने में व्यस्त कृषक यत्र-तत्र गीतों मे आन्तरिक उल्लास को उडेले दे रहे थे। अनेक अपना काम समाप्त करके झूमते और थकान को आनन्द-गान में भुलाते घरों को लौट रहे थे, और दूर गाँव के आँचल से आता हुआ गीत मन्द ध्वनि में श्रुतिगोचर हो रहा था--हरे रामा, बिना गुरु का चेला फिरत अकेला रे हारी!

हेमचन्द्र प्रकृति का सात्त्विक-मद पीता चला जा रहा था। रास्ते मे टहलता हुआ ब्रजेन्द्रशंकर मिला। बोला--मास्टर साहब, यह विद्यालय न टूटा।

हेमचन्द्र--अब टूटेगा, मैं पहुँच रहा हूँ। अवसर आते ही यह कार्य सम्पन्न होगा।

ब्रजेन्द्रशंकर--देखा जाएगा। चुनाव होने जा रहे हैं। आप कहाँ से लड रहे हैं?

हेमचन्द्र--मैं चुनावों में विश्वास नहीं रखता। मेरा विश्वास क्रांति में है। जब तक जनता में इतनी शिक्षा और इतना चरित्र-बल न हो जाय कि वह मत के मूल्य को समझ सके, उसका सम्यक् उपयोग कर सके, जब तक चुनाव शासकीय अन्याय तथा भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं हो जाते, तब तक वे मरु-मरीचिका मात्र बने रहेंगे। शासन इसके लिए उत्तरदायी है, जो अपने स्थायीकरण की सुदृढ़ता के लिए जनता को अज्ञान के तिमिर मे डाले रखना ही श्रेयस्कर समझता है। चुनावों मे सरकार ही जीतेगी। कारण, बेईमानी और प्रत्यक्ष-परोक्ष दबाव का प्रयोग होगा, और जनता मे अभी जागरण नहीं है। मेरा विश्वास क्रांति में है।

ब्रजेन्द्रशंकर--यहाँ भी तो क्रांति हो गई, देश आजाद हो गया है?

हेमचन्द्र--भारतवर्ष की स्वतंत्रता-प्राप्ति की घटना को क्रांति नहीं कहा जा सकता। क्रांति का अर्थ है--आमूल परिवर्तन! भारत के शासन या जन-जीवन में कोई आमूल परिवर्तन नहीं है। सभी स्थितियाँ प्रायः पूर्ववत हैं। यह एक बड़ा परिवर्तन है। किन्तु इसे क्रांति कहना क्राति शब्द का उपहास करना है। क्राति के पश्चात राष्ट्र में जो तीव्र जीवनी-शक्ति आती है, भारत मे वह नही आई। यह स्वयं सबसे बड़ा प्रमाण है कि भारतीय स्वातंत्र्य-प्राप्ति की घटना क्रांति नहीं है।

ब्रजेन्द्रशकर--क्या आप रूसी ढंग की क्रांति चाहते हैं?

हेमचन्द्र—हाँ, और नहीं भी। मैं भारतीय समाज, भारतीय राजनीति, भारतीय आर्थिक व्यवस्था, सब में क्रांति चाहता हूँ। सच्ची क्रांति रूस की क्रांति थी, क्योंकि उसने राष्ट्र के सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक संघटन में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। रूस की क्रांति मानवता के इतिहास की सबसे बड़ी क्रांति थी, जो अन्य अनेक महाक्रांतियों को जन्म दे चुकी है, दे रही है और देती रहेगी। किन्तु हम किसी की अन्धी नकल के विरुद्ध हैं। हम क्रांति के राष्ट्रीय स्वरूप का स्वीकार करते हैं। खैर, बताओ, तुमने पढ़ना छोड़ दिया या नहीं?

ब्रजेन्द्रशंकर—जी, छोड़ दिया। आज की घासलेटी शिक्षा में मेरा विश्वास नहीं। आज की भारतीय शिक्षा का वातावरण व्यक्ति को शोषक एवं विलासी बना देता है। सरकार की भलाई इसी में है, इसलिए आलोचना की फुलझड़ियाँ छोड़ते हुए भी वह उसमें कोई परिवर्तन—वास्तविक परिवर्तन—करने को तैयार नहीं। विद्या का लक्ष्य है, क्षुद्र बन्धनों से मुक्ति, 'सा विद्या या विमुक्तेय।' किन्तु आज की शिक्षा व्यक्ति को विलास, आलस्य और आडम्बर में बाँध रही है। उसका सारा इतिहास एक पंक्ति में यों है—'बी. ए. किया, डिप्टी हुए, पेंशन मिली और मर गए!' फटहे नेता अनुशासन का रोना रोते हैं, पर यह नहीं जानते कि यह सब उन्ही की करणी का फल है। स्वय उनमें कितना अनुशासन है? खैर, मुझे तो साहस का जीवन बिताने में ही आनन्द आता है। मैं तो डाकू बनना चाहता हूँ। रॉबिनहुड, सुलताना, मानसिंह, भूपत, रूपा, लाखन और देवीसिंह का चरित मुझे रुचता है।

वह हँस पड़ा।

हेमचन्द्र—किन्तु यह उचित नहीं। पढ़ो और वीर भी बनो। भीष्म वीर भी थे और विद्वान भी, जूलियस सीजर पंडित भी था और योद्धा भी। तुम भी ऐसे ही बनो। तुम्हारा भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। अतः दुर्बल विचारों को पास न फटकने दो।

ब्रजेन्द्रशंकर—पिताजी भी यही कहते थे। ऐसा ही करूँगा। स्वाध्याय में मन लगाऊँगा। एक दिन दिग्विजियनाथ को डाँटा। काँपने लगे। बोले, अब कभी गलती न होगी। मैंने छोड़ दिया।

हेमचन्द्र—यदि तुम न होते, तो मैं जीवित न होता। यह जीवन तुम्हारा

दान है। अब तो मैं स्वय भी कुछ चिन्ता रखने लगा हूँ। देखो!—उसने जेब से पिस्तौल निकालकर ब्रजेन्द्रशकर को दिखाया। वह दंग रह गया।

बोला—मुझे प्रसन्नता है। हमें वीर बनना चाहिए। आदर्श की ओट में कायरता को छिपाना ही जीवन में सबसे बड़ा पाप है।

हेमचन्द्र—मैं अब गऊ बनकर अन्याय नहीं सहन कर सकता। अपनी शक्ति का प्रयोग मैं भी करूँगा। भविष्य के गर्भ में क्या-क्या छिपा है, इसकी मुझे चिन्ता नहीं, वर्तमान से मैं न डरूँगा।

□□□

पकजजी सौन्दर्य के गम्भीर पुजारी थे। यही कारण था कि उन्होंने विवाह न किया था, क्योंकि विवाह करने से सौन्दर्य-बोध ठीक से नहीं हो पाता। क्षेत्र सीमित हो जाता है। उनका मत था कि कलाकार के लिए समाज को सौन्दर्य-सम्बन्धी काफी छूट देनी चाहिए। सुन्दरम् से शिवम् और शिवम् से सत्यम् की ओर अग्रसर होकर ही कलाकार की साधना आनन्दमय कोष की उपलब्धि में सफल होती है।

सौन्दर्य-प्रेम का क्षेत्र पंकजजी के लिए नितान्त विस्तृत था। वह कहते थे—सौन्दर्य एक ईश्वरीय उपहार है। जिसे वह प्राप्त हो, वह भी साधना का विषय बनने का अधिकारी है। उनका यह क्षेत्र विद्यालय के सुन्दर छात्रों तक प्रसरित था। उनकी रसीली कविता इस दिशा में जादू का काम करती थी। आबरू, आरजू, जानजानाँ मजहर, मीर, ताबाँ, आस्कर वाइल्ड आदि की जीवनियाँ सुनाने में उनका मुकाबला न था। फिराक गोरखपुरी के शेरों का आन्तरिक रहस्य खोलने में वे लासानी थे। किन्तु वह उन भ्रमरों में थे, जो सतत नूतनतर प्रसाधनों के अन्वेषण में रत रहते हैं।

हेमचन्द्र जब विद्यालय में पहुँचा, तो उसे यह व्यापार पर्याप्त उन्नत दिखाई पड़ा। दो-एक ऐसे ही सरस अध्यापक और थे। प्रत्येक कक्षा में ऐसी चर्चाएँ छिड़तीं। छात्र अध्यापकों से हास-विनोद करते, नए-नए शिगूफे छोड़ते और कभी-कभी अध्यापक अपने वैयक्तिक-अनुभवों का कक्षा मे ही इतना विशद निरूपण करते कि चण्डूखाने का स्मरण आ जाता। हेमचन्द्र को

यह सरसता का वातावरण वीभत्स प्रतीत हुआ। कालीपद के समय मे ऐसी बाते बहुत छिपे रूप में, और अल्पातिअल्प परिमाण मे, होती थीं। किन्तु अब इन्हीं का राज्य था।

हेमचन्द्र ने शास्त्रीजी से भेंट की। शास्त्रीजी निर्वाचन के सिलसिल मे एक चुनाव-दंगली स कह रहे थ-देखो, जितने वोटर पोलिंग में भाग न ले सबका पता और नाम अपने तैयार व्यक्तियों को याद रहे। यह राजनीति है। दो-तीन हजार वोट इसी तरह सही। अधिकारी अपने अनुकूल रहेंगे।

बहुत देर बाद, जब फुर्सत मिली, हेमचन्द्र स आने का कारण पूछा। उसन सारा कच्चा चिट्ठा सामने रख दिया। शास्त्रीजी ने कहा-आप भी बकार की बातों में पड़े रहते हैं। यह तो जमाना है। कहाँ नहीं हो रहा यह?" फिर कुछ सरसतापूर्वक बोले-"आप भी तो कवि हैं। आप तो जानत हैं, कला आश्रय चाहती है। पंकज मनोरंजन करता होगा।" हेमचन्द्र अब और अधिक क्या कहता? लौट आया।

पंकजजी की कृपा जिस छात्र पर हो जाती, वह सरलता से, बिना कुछ पढ़े ही, विद्यालय की परीक्षाओं में प्रथम आ जाता, मैगजीन मे चित्र के साथ उसकी रचना होती और वह पुरस्कृत भी किया जाता। अन्य छात्र पर्चो के सम्बन्ध में उससे अनुनयविनय करते दिखाई पड़ते। किन्तु यह कृपा सब पर तो हो न सकती थी। कोई बिरला ही वहाँ तक पहुँच पाता था। और कभी-कभी वितण्डावाद भी उठ खड़े होते थे।

हेमचन्द्र के स्कूल आते ही एक ऐसा झगड़ा शुरू हो गया। जिस लड़के से इस झगड़े का सबंध था, वह किसी दूरस्थ गाँव का था, यहाँ हॉस्टल में रहता था। पंकजजी उस पर आरम्भ से ही विशेष कृपालु थे। निःशुल्क पढ़ाने के लिए घर बुलाया, पर उसे अवकाश न मिला। परिणाम यह हुआ कि वह बेचारा तिमाही परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया। वैसे तेज था। उसे बड़ा अन्सतोष हुआ। उसकी भेंट ब्रजेन्द्रशंकर से ही गई। ब्रजेन्द्रशंकर के पचास से अधिक पुराने दोस्त अब भी यहाँ पढ़ते थे। फिर क्या था? पूरा प्रबन्ध हो गया। हेमचन्द्र तटस्थ था, यद्यपि उसकी सहानुभूति उस लड़के के साथ थी।

उधर पकजजी अपनी धुन में लगे थे। यही एक ऐसा लड़का मिला था, जिसकी दुर्धर्षता पर उन्हें आश्चर्य था। एक दिन ऑफिस में बुलवाया। कुछ देर बाद ऑफिस के अन्दर से उसकी आवाज आई। लड़के अन्दर घुस

गए। सचेष्ट गुट ही अगुवा रहा। ब्रजेन्द्रशंकर वहाँ भी उपस्थित था। पंकजजी पर जूतों की वर्षा हुई। हुल्लड़ में विद्यालय का छज्जा गिर गया। ब्रजेन्द्रशंकर ने लड़कों से पंकजजी को ढकेल देने का संकेत कर दिया। अन्ततोगत्वा, पंकजजी 'सीरियस' हालत में हो गए। ब्रजेन्द्रशंकर का कहीं पता न चला। हेमचन्द्र को लोगों ने इस घटना से नितान्त दूर देखा।

शास्त्रीजी आए। साथ में बीस चुने हुए गुण्डे थे। उनको देखते ही लड़के भीगी बिल्ली बनकर अपने दर्जों में चले गए। पुलिस आ गई थी। लेकिन शास्त्रीजी मँज हुए व्यक्ति थे। घरेलू झगड़ा कहकर टाल दिया। पंकजजी को अस्पताल भिजवा दिया और लगे जाँच करने। आज उन्होंने उग्र रूप धारण किया। आतंक छा गया। वह और भी शेर हो गए। उन्हें शक था कि घटना के पीछे हेमचन्द्र का हाथ है। बीसों जवान ऑफिस के बाहर बैठे मूँछों पर ताव दे रहे थे, अन्दर शास्त्रीजी बेंत और गालियों का स्वच्छन्द प्रयोग कर रहे थे। मास्टर लोग भी डाँटे जा रहे थे। अन्त में हेमचन्द्र का नम्बर आया। शास्त्रीजी शुरू से ही दहाड़-दहाड़कर डाँटने लगे। सब पर आतंक जम चुका था। बोले—जानते हो, पंकजजी की पसलियाँ टूट गई हैं। तुम प्रभावशाली अध्यापक हो, चाहते तो दुर्घटना बचा लेते। तुम्हारी शह पाकर लौंडे बाघ हो गए। तुम इस काण्ड के जिम्मेदार हो। मैं....मुझे जानते नहीं......रसातल....।

हेमचन्द्र को यह सिलसिला न जँचा। वह रुक न सका। बोला—आप मुझसे नाहक गरम हो रहे रहे है। मैं क्या...?

शास्त्रीजी आज सशक्त थे—चुप कुत्ते! अब बोला, तो जबान खिंचवा लूँगा। उन्होंने हण्टर पकड़ा।

हेमचन्द्र का शरीर क्रोध से काँपने लगा। चेहरा और आँखें सुर्ख। जरा जोर से बोला—शास्त्री, सम्भलकर बोलो। बुरा.....

शास्त्रीजी जानते थे कि अगल-बगल से, चिकों की ओट से, अनेक विद्यार्थी और अध्यापक यह दृश्य देख रहे हैं। जो आतंक और प्रभाव में आ गए हैं, वे भी ऐसी गुस्ताखी देखकर बढ़ जाएँगे, सिर पर चढ़ जाएँगे, जिसका परिणाम बुरा होगा, सारे किए-कराए पर पानी फिर जाएगा। अतः क्रोधावेश में उन्होंने उठकर हेमचन्द्र के शरीर पर दो-तीन हण्टर सड़ासड़ जमा दिए। वह चीत्कार कर उठा। किन्तु कोई प्रतिक्रिया न हुई। शास्त्रीजी ने और मारने का उपक्रम किया, और गलियों की बौछार शुरू की। बाहर

दल जो बैठा था, वह निर्भय थे।

किन्तु उनकी गति को रुकना पड़ा। हेमचन्द्र ने सक्रोध उनके हाथ से हण्टर छीनकर फेंक दिया और उनकी गर्दन इतनी जोर से दबाई कि वह बहुत जोर से चिल्ला भी न सके। किन्तु जो थोड़ा-सा आर्त्तनाद हुआ उसने बाहर बैठे रंगरूटों को सजग कर दिया। 'मारो-मारो' चिल्लाते वे ऑफिस के अन्दर घुसने लगे।

हेमचन्द्र का मस्तिष्क अब निष्क्रियता की सीमा तक पहुँच गया। फिर भी, शीघ्रता में उसे रोमांचक एवं अपमानपूर्ण भविष्य दिखाई दे गया: उसके हाथ सेचष्ट हुए और क्षण-भर में ही उसके हाथ में पिस्तौल दिखाई पड़ी। दहाड़ पड़ा--रुक जाओ!

गुण्डों ने देखा, हेमचन्द्र पिस्तौल लिये खड़ा है। वे रुक गये, शास्त्रीजी की घिग्घी बंध चुकी थी। हेमचन्द्र ने गुण्डों को ललकारा--"कुत्तो, भाग जाओ, नही तो प्राण खो दोगे।"

गुण्डों के दल से एक कर्कश, अनुभवपूर्ण आवाज आई--"नकली पिस्तौल है, पकड़ लो!" एक व्यक्ति आगे और शेष पीछे उत्साहपूर्वक बढ़े। बाहर बड़ी भीड़ थी।

हेमचन्द्र को अब कुछ न सूझ पड़ा। उसने गोलियाँ चला दीं। पिस्तौल छह फायर वाला था। तीन-चार गुण्डे एक-साथ धराशायी हो गए। हेमचन्द्र ने और कारतूस निकाले और भरे। सब गुण्डे भाग चुके थे, बाहर सन्नाटा छा गया। अन्दर शास्त्रीजी काँपते हुए खड़े थे।

हेमचन्द्र ने पिस्तौल उनकी ओर मोड़ी। उसके मुख से शब्द निकले--'तुमने मेरे साथ क्या नहीं किया? सबका बदला एक साथ। सौ सुनार की एक लुहार की! मैं तो जाऊँग ही, तुम पहले चले जाओ'! और उसने तीन गोलियाँ शास्त्रीजी के सीने पर छोड़ दीं। इसके बाद भूत की भाँति कमरे से निकला, इमारत के बाहर आया। सन्नाटा छाया था! बाहर ब्रजेन्द्रशंकर मोटर-साइकिल लिये खड़ा था। हेमचन्द्र से बोला--"जल्दी कीजिए, पीछे बैठ जाइए। पुलिस आ रही है।"

शास्त्रीजी तथा तीन अन्य व्यक्तियों के मरने, हेमचन्द्र के फरार होने तथा पंकजजी के घायल होने का समाचार घण्टे भर के भीतर सारे निकटवर्ती क्षेत्र में फैल गया। गहरी जाँच हुई, किन्तु हेमचन्द्र का वारंट निकालने के अतिरिक्त और क्या हो सकता था?

शास्त्रीजी के परिवार मे कोई ऐसा वयस्क और योग्य व्यक्ति न था, जो विद्यालय चलाने की चेष्टा करता। वैसे ऐसी चेष्टा सफल भी न हो पाती। कॉलेज बदनामी के साथ टूट गया। शास्त्रीजी का परिवार किसी तरह जीवन गुजारने लगा।

पंकजजी महीने-भर बाद हॉस्पिटल से निकले। जिधर भी गये, लोगों को कानाफूसी करते और उँगली उठाते देखा। मारे शर्म के राजपुर छोड़ अन्यत्र चले गए। दिग्विजयनाथ ने सन्तोष की साँस ली। मिस्टर रॉबिन्स को समाचार दिया। किन्तु रॉबिंस को कुछ भी हर्ष न था, यूनियन तो उनकी छाती पर थी ही! दिग्विजयनाथ को अन्दर-ही-अन्दर शास्त्रीजी की हत्या से प्रसन्नता हुई। जिला कॉंग्रेस पर उनका एकछत्र शासन होने में अब कोई व्यवधान न रह गया। वह अब जमींदारी-जागीरदारी प्रथा के प्रखर आलोचक हो गए। लोक-कल्याण और जनसेवा पर फिदा थे।

सुलोचना हेमचन्द्र के फरार होने पर बहुत दुखी हुई। सदा उससे मिलने के उपाय सोचा करती । किन्तु वह कहाँ गया है, यह कैसे ज्ञात हो सकता था? उसका शरीर घुलने लगा, हृदय विगलित होने लगा।

रणंजयनाथ का जीवन भी विचित्र बन गया। वह सुलोचना की कोई चिन्ता ही. न रखते। कभी-कभी आते, कभी दिग्विजयनाथ को भेजने के लिए पत्र लिखते। दिग्विजयनाथ भेजते, तो कैसे भेजते? सुलोचना के आँसुओं के सामने उनकी एक भी न चलती थी। वह ऊब गए थे। सुलोचना का जीवन उनकी समझ में न आता था। प्राय: बीमार रहती थी। कभी-कभी सिरदर्द इतना बढ जाता कि डॉक्टर आते। किन्तु उपचार होता, तो कैसे?

इधर रणंजयनाथ तीन महीने बाद राजपुर आए। सुलोचना से अबकी वह एक पुलिस-अफसर के रूप में ही मिले। आते ही बताया-देखो, यह हेमचन्द्र भी मेरे सिर का दर्द बन गया। लेकिन बच नहीं सकता। सी. आई. डी. से सूचना मिली है कि वह डाकू हो गया है। जो भी हो। तुम्हारा क्या हाल है?

सुलोचना एक सूखी मुस्कान को मुख तक लाते हुए बोली—मै तो ठीक हूँ।

रणंजयनाथ—मैं तो ऊब गया हूँ....।

सुलोचना—उसका भी उपचार हो सकता है।

रणंजयनाथ गरम हो गए, बोले—तुम हेमचन्द्र के चक्कर में पड़ी हो, आज वह मिल जाय, तो शरीर और हृदय का सिद्धान्त रखा ही रह जाय। उससे तो इस जन्म में मिलन शायद न हो पाए। तड़फ रही हो।

सुलोचना—व्यर्थ के विद्रूप शोभा नही देते।

रणंजयनाथ—नया शासन है, जमींदारी गई, राज्य गए। मैंने किसी लोभवश तुम्हारे साथ शादी न की थी। मेरे हृदय में तुम्हारे लिए प्रेम था। लेकिन अब नहीं है। प्रेम अपनी प्राप्ति को अपने तक ही सीमित रखता है। इस विषय में उसमें ईर्ष्या होती है।

सुलोचना—मैंने तो सभी-कुछ स्पष्ट कर दिया था।

रणजयनाथ—मैं दूसरा विवाह कर लूँगा। तलाक न दूँगा...

सुलोचना—धन-रियासत जो है! उस विवाह का सबसे पहला समर्थन मेरा रहा। मैं तो आपको सुखी देखना चाहती हूँ! आप अवश्य कर लीजिए! मैं तो आपकी हूँ ही। मैं देखना चाहती हूँ कि प्रेम की आग में जलना कितना पवित्र और प्यारा होता है। उसके आँसू आ गए।

रणंजयनाथ को क्रोध आ गया। बोले—अपशब्द कहकर ये नखरे न करो। मैं भी वहीं करूँगा, जो तुम कर रही हो। वह कमरे से बाहर निकल आए। जाते हुए उन्होंने सुना—''तुम वह नहीं कर सकते। पुरुष के लिए यह कठिन साधना दुष्कर है और तुम्हारे लिए कठिनतम।''

रणंजयनाथ लौट आये, गरजकर बोले—पर-पुरुष से प्रेम करना और उपदेश देना साथ-साथ! ह:ह:ह:! मैं तुम्हारा मुँह देखना नहीं चाहता। फिर भी, कुछ ध्यान देना पड़ता है। मै शादी करूँगा। किन्तु तुमको छोडूँगा नहीं। कभी तुम रास्ते पर आकर यह महसूस करोगी कि तुमने कितनी बड़ी भूल की थी।

सुलोचना कुछ न बोली।

□□□

रणंजयनाथ बाल्यकाल से ही सुन्दरियों के सम्पर्क से दूर रहे थे। बचपन में उन्होंने ब्रह्मचर्य का महत्त्व एक संन्यासी से सुना था। वह उनके हृदय में जम गया था। यही कारण था कि पाश्चात्य शिक्षा ने भी उनके जीवन की यौन-पवित्रता को कायम रख सकने में व्यवधान न डाला था। उनका शरीर बहुत सुन्दर था और स्वास्थ्य उससे भी सुन्दर। उन्नति भी शीघ्रता स हुई। अब जवानी भी अपनी जवानी पर थी। नारी के प्रति एक विशेष आकुलता तथा आसक्ति स्थायी रूप मे मन में बनी रहती थी। सुलोचना से वह निराश ही रहे। एक कारण और था। स्त्री सम्पर्क न होने के कारण एक नैसर्गिक तथा मानसिक झिझक उनमे भी बनी रहती थी।

अब रणंजयनाथ में परिवर्तन हो रहा था। पहले हेमचन्द्र को समस्या को वह भावुकता-मात्र समझते थे। लेकिन वह बहुत गम्भीर निकल गई। उसे वह अपने लिए एक चुनौती समझन लगे। जहाँ वह सुलोचना के प्राणों को तिल-तिल काटकर समाप्त करने की इच्छा करने लगे थे, वहाँ हेमचन्द्र के तो प्राणों के ग्राहक ही हो गए। इसी बीच उन्हें शास्त्रीजी आदि की हत्याओं का समाचार मिला। वह बहुत प्रसन्न हुए। "एक पत्थर से ही दो पक्षी मर गए। सुलोचना घुट-घुटकर मरेगी, मैं मजा लूँगा, रिसायत और सम्पत्ति तो अपनी है ही। रहे मिस्टर हेमचन्द्र, उनको तो मै अब जीने न दूँगा।" और वह इसी प्रयत्न में सन्नद्ध हो गए।

इधर वह समारोहों में भाग लेने लगे थे। स्विमिग क्लब में यूरोपियन किशोरियाँ आती थीं। पहले रणंजयनाथ को तैरने से जितनी रुचि थी, क्लब से उतनी ही घृणा थी। नदी में तैरते थे। अब उन्हें क्लब मे ही आनन्द आता था। स्पर्शजन्य मधुकम्पन से ही वह आलोड़ित-विलोड़ित हो जाते थे। उनका पद, उनकी स्थिति, उनका स्वास्थ्य और सबसे बढ़कर उनका रूप, क्लब की सुन्दरियों, विशेषकर यूरोपियन किशोरियो तथा युवतियों के लिए विशेष आकर्षण की वस्तु बन गया था।

क्लब में आने वाली युवतियों मे जिला-जज मिस्टर रॉबर्टसन की ग्रेजुएट पुत्री पमीला विशेष स्वस्थ तथा सुन्दर थी। शोखी तथा नजाकत में भी उसकी सानी न थी। रणजंयनाथ कभी-कभी युवक-सुलभ रहस्यमयी दृष्टि से देख लिया करते थे। उसके रजत केश, उसकी भूरी आँखें, उसका उभरा उन्नत यौवन और आश्चर्यजनक स्फूर्ति सभी इन्द्रजाल और कुहक के

रूपान्तर थे। यों तो क्लब भर के सभी पुरुष उसकी ओर ध्यान से, मुसकान से और एक खास अदा से देखते थे, मगर रणंजयनाथ की दृष्टि में सच्ची पिपासा को अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट करने वाली जो तड़प होती थी, वह पमीला को भी प्रभावित कर सकने में समर्थ हो गयी थी। वह उनके बारे में जानती थी। अतः हृदय मे एक गुदगुदी होने पर भी टाले रहती थी। रणंजयनाथ भी उसकी आँखों की भाषा कुछ-कुछ समझते थे।

एक दिन रणंजयनाथ अपनी कार पर क्लब से लौट रहे थे। कुछ-कुछ बूँदा-बाँदी हो रही थी। उन्होंने रास्ते में पमीला को पैदल जाते देखा। बोले-"ओह, आप पैदल जा रही हैं! अगर कोई कष्ट न हो, तो मेरी कार में बैठ लीजिए।"

पमीला के मुख पर एक भेदभरी मुसकान खेल गई। रणंजयनाथ मुग्ध -से उसके मुख की ओर देखते रह गये। वह हँस पड़ी, रणंजयनाथ सकपका गये। किन्तु उनको अपूर्व शान्ति मिली। पमीला कार के अन्दर जाकर बैठ गई। कूकी-"ड्राइव मैं करूँगी।"

रणंजयनाथ बोले-"ओह, नहीं, आपको इतना कष्ट न दूँगा। आप कोमल हैं।'

पमीला शरमा गई, किन्तु ढीठ थी। बोली-"ओह, मुझे तो आज ही मालूम हुआ कि मैं कोमल भी हूँ।" और उसके आरक्तिम कपोल विशेष लाल हो गए।

रणंजयनाथ का पहला उत्साह था, नया मुसलमान प्याज अधिक खाता है। उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ा। बोले-आप और भी बहुत-कुछ हैं। स्वर्गीय उपहारों की विभूति से सम्पन्न भाग्यशाली दूसरे की भावनाओं का ध्यान कहाँ रखते हैं?

पमीला गहरी बातों की शौकीन न थी। उसे फुदकना पसन्द था, लम्बी उड़ानों से घबराती थी। फिर भी, पर तोलने ही पड़े-आपका कथन ठीक नहीं। शेक्सपीयर ने लिखा है-सौन्दर्य दया के साथ रहता है, ब्यूटी लिव्ज विद काइन्डनेस। फिर पात्र के साहस और क्षमता की पवित्रता का भी तो ध्यान रखा जाता है। मिस्टर रणंजय, आपकी वधू कैसी हैं?

रणंजयनाथ खिसियाने-से स्वर में बोले-वह ऐसी ही है।। एम. ए. है कवयित्री है, कालिदास, शेक्सपियर आदि के साहित्य का अच्छा अध्ययन-

अनुशीलन किया है बला की हसीन है फिर भी वह आध्यात्मिकता की डींग हाँकती है। दूसरे से प्रेम करती है। अन्तिम वाक्य पर उन्हें स्वयं लज्जा आ गई।

पमीला–तो क्या हुआ? कोई आवश्यक नही कि एक पुरुष एक ही स्त्री या एक स्त्री एक ही पुरुष पर निर्भर रहे। यह बात अवैज्ञानिक और अमनोवैज्ञानिक है। आप क्या सिर्फ उसी से प्रेम करते हैं? अन्तिम वाक्य में कुछ जिज्ञासामयी तुर्शी थी।

रणंजयनाथ–एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। एक को निकालकर ही दूसरी रखी जा सकती है। मैंने उसे छोड़ दिया है, तब तुमसे प्रेम करता हूँ। उसने मुझे बिना छोड़े ही दूसरे को प्रेम किया है।

पमीला--पहले परिचय में ही प्रेम की बात कह रहे हैं? क्या इसे भावुकता नहीं कहा जा सकता?

रणंजयनाथ–भारत में केवल स्वप्न, ख्याति तथा चर्चा के आधार पर ही प्रेम होते है और हो सकते हैं। उन्होंने कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए तथा कवियों की कुछ पंक्तियाँ सुनाने लगे। भाव–विभोर कंठ से सरल स्वर–लहरी फूटी–'प्रिय पमीला, प्रेम सदा पहले परिचय से ही होता है। 'लव ऐट फर्स्ट साइट!'

रणंजय को एक मादक दृष्टि से देखते हुए पमीला बोली–केवल साहित्य में ही न? प्रत्यक्ष जीवन और साहित्यिक जीवन में जागरण और स्वप्न का–सा अन्तर होता है।

ररणंजयनाथ कट गए, लुटे–से रह गए–यह बात नहीं है, पमोला मैं तुम्हें महीनों से चाहता हूँ। फिर भी, मुझे खेद है, तुम विश्वास नहीं करती हो। प्रेम विश्वास की सन्तान है।

पमीला–प्रेम विश्वास की सन्तान है, यह साहित्यिक सत्य है। प्रेम विश्वास और सन्देह का संगम है, यह वास्तविक सत्य है। होगा, क्या तुम मुझसे प्रेम करते हो, अकेले मुझसे? वह रणजयनाथ की ओर विशेष सरक गई।

आत्मविस्मृत और मुग्ध रणंजयनाथ बोले–ईश्वर की शपथ, मैं अपना हृदय महीनों पहले दे चुका हूँ। तुम स्वयं हृदय पर हाथ रखकर देख लो, मेरे कथन की सत्यता प्रमाणित हो जाएगी। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ कर सकता हूँ।

पमीला हँस पड़ी—ईसाई धर्म स्वीकार कर सकते हो? बोलो, भावुकता की परख हुई जा रही है।

रणंजयनाथ की चेहरा एकाएक सूख गया। पमीला ने सारी क्रिया-प्रतिक्रिया का अनुशीलन कर लिया। रणंजयनाथ चुप-के-चुप रहे। पमीला ने रद्दा रखा—यही प्रगाढ़ भारतीय प्रेम है। धर्म प्रेम से बढ़कर नहीं है। प्रेम मानव का सबसे बड़ा धर्म है।

और रणंजयनाथ के मुख से निकल पड़ा—मै जाति-बहिष्कृत, वंश-बहिष्कृत तथा कुल--बहिष्कृत कर दिया जाऊँगा। फिर भी, यदि तुम विवाह का आश्वासन दो, तो मैं विचार करूँ। पमीला ने उन्हें स्पर्शदान एवं दृष्टिदान से आप्यायित करते हुए कहा—"हाँ।"

रणंजयनाथ मादकता से काँपते हुए बोले—तो मैं भी सब कुछ कर डालूँगा। और उन्होंने अमेरिकन-ब्रांडी से सुरभित पमीला के ओंठों पर अपने चिर पिपासाकुल उष्ण होंठ रख दिए। मोटरकार सड़क के बगल वाले गड्ढ में गिरते-गिरते बची।

इसके बाद रणजयनाथ का चोला ही बदल गया। फैशन और पोशाकों के चयन सीमा का अतिक्रमण कर गए। ब्रांडी से श्वास सुगन्धित रहने लगा। नृत्य आदि में रुचि बढ़ने लगी। पिता, माता, घरवालों से झगड़े होने लगे। दिग्विजयनाथ से शत्रुता-सी रहने लगी। और एक दिन अखबारों में समाचार आया कि मिस्टर रणंजयनाथ ने ईसाई धर्म ग्रहण करके श्री रॉबर्टसन की सुन्दर पुत्री पमीला से विवाह कर लिया है।

समाचार को पढ़कर दिग्विजयनाथ ने सिर पीट लिया और जाकर सुलोचना से उलझ गए। वह हँसती ही रही, एक विचित्र हँसी! आदि से अब तक उसने वेदना या व्यथा का एक भी चिह्न न दिखाया। दिग्विजयनाथ गरजे—तुमने ही यह सब किया....।

सुलोचना—चयन तो आपने किया था। मैंने क्या किया? धर्म-परिवर्तन मैने किया? ईसाई मैं बनी? दूसरा विवाह मैंने किया?

दिग्विजयनाथ—सम्बन्ध-विच्छेद भी नहीं किया। मेरी इज्जत का कितना ध्यान रखा? हाय, कितना सज्जन है। मेरी बदनामी नहीं होने दी।

सुलोचना—आप नेता हैं। आपका दामाद भला ऐसा कैसे कर सकता था? इज्जत दो-तीन अंगुल ऊँची हो गई।

दिग्विजयनाथ कभी-कभी हल्की-सी पी लेते थे-सॉफ्ट ड्रिंक। कहते थे- "बिना पिए बोलते नहीं बनता।" इस सम्बन्ध में उन्हें कई महापुरुषों के नाम याद थे। आज भी पिए थे। तैश में आकर उठे और सुलोचना के एक थप्पड़ मार दिया। पिता के हाथ से मार खाकर सुलोचना की आँखें न थम सकीं। आँसू झरने लगे।

दिग्विजयनाथ का नशा उतर गया. बोले-क्यों टी. वी. का शिकार होती है। जा, हरिद्वार में हवा बदल आ। वहाँ मेरे साले रहते हैं, तेरे मामा। मैं प्रति मास रुपये भेज दिया करूँगा। भगवान का भजन करना, फल-फूल, दूध-दही खाना. शुद्ध गंगा-जल पीना, चित्त को शान्ति मिलेगी। बेटी, मेरा पिता का हृदय है। तेरा जीवन व्यर्थ हो गया, इसलिए मैं अनुचित कर बैठा। भावावेश उचित-अनुचित नहीं देखता।

□□□

सर दिग्विजयनाथ कॉंग्रेस के प्रान्त-विख्यात नेता हो गए। कॉंग्रेसी-मंत्रिमण्डल में आबकारी विभाग के मंत्री बनाए गए। धन के कारण दलबन्दी मे वे ही सरताज रहे। अच्छा दबदबा बना लिया।

उनको गांधी-आश्रम की हाथ से कती श्वेत दूधिया खादी की धोती और कुरता तथा रबर के गांधी चप्पल धारण किए देखकर लोग हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त की महिमा के कायल हो जाते थे। कहाँ पहले नित्य अमेरिकन ब्रॉडी पीते थे, कहाँ अब मद्य-निषेध पर घंटों भाषण देते थे, कहाँ कितनो को ही मरवा डाला था, कहाँ अहिंसा के घोर भक्त हो गए थे। जनता उन्हें साक्षात ऋषि मानने लगी थी। जहाँ-तहाँ चर्चाएँ होती थीं-विश्वामित्र और वाल्मीकि आदि पहले क्या थे? बाद में क्या हो गए थे? ऐसों पर ही पृथ्वी सधी है।

श्री दिग्वजयनाथ सदन की प्रवर-समिति के सदस्य थे। उन्होंने सभी से। उनके नाम के साथ 'सर' की पदवी का प्रयोग कतई न करने की प्रार्थना कर दी थी और इस आशय की एक विज्ञप्ति समाचार-पत्रों मे भी प्रकाशित करा दी थी। इसका भी असर पड़ा था। वेतन में कुछ कटौती करा दी थी।

अत. उनके व्यक्तित्व का लोहा सभी मानते थे. समारोहो मे उनका विशेष सम्मान होता क्योंकि चन्दे की आशा सभी को रहती है।

कमेटी की एक सदस्या थीं कुमारी सरोज पन्त। कुमारी से प्रयोजन केवल अविवाहित होने से है। वैसे अवस्था तीस से काफी ऊपर थी। फिर भी, स्वस्थ होने के कारण कम उम्र की प्रतीत होती थी। परतंत्र भारत में विवाह करके सन्तानोत्पत्ति न करने का प्रण किया था। देश के खातिर पाँच बार जेल जा चुकी थीं। अपने अमूल्य जीवन के आठ वर्ष कारावास की यातनाओं में व्यतीत किए थे। आप प्रान्तीय काँग्रेस की अध्यक्षा, सदन की सदस्या तथा अखिल भारतीय महिला संघ की मंत्राणी थीं। आपका बडा सम्मान था। मुख्यमंत्री तक आपसे पर्याप्त स्निग्धतापूर्वक बात करते थे भाषण देने में आप बेजोड़ थीं। हिन्दी और अंग्रेजी, दोनों भाषाओं पर आपका अच्छा अधिकार था।

श्री दिग्वियजनाथ प्रारम्भ से ही उनके निकट सम्पर्क में रहते थे। वह भी एक विशेष मुस्कान के साथ उनसे मिलती थीं। दिग्विजयनाथ अंग्रेजी के धुरन्धर ज्ञाता और कुशल वक्ता थे। पर हिन्दी में चलताऊ गति ही थी। इसीलिए दोनों आपस मे अंग्रेजी में ही बात करते थे। प्रात: देखा जाता कि श्री दिग्विजयनाथ और कुमारी सरोज का मत एक-ही रहता था। प्रान्तीय मंत्रिमण्डल न मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में एक विशेष कमेटी बनाई। कुल तीन सदस्य थे, वे मुख्यमंत्री के अतिरिक्त श्री दिग्विजयनाथ और कुमारी सरोज ही थे। मुख्यमंत्री विशेष सामाजिक जीव थे, जनता के आदमी थे, उद्घाटन और शिलान्यास के मारे दम लेने तक का अवकाश न पाते थे, इससे उन्हें कार्य के लिए विशेष अवकाश न मिल पाता था। अत: कमेटी के कार्य का प्राय: सारा भार इन दोनों व्यक्तियों के कन्धों पर ही आ पड़ा। इस सिलसिले में साथ-साथ दौरे हुए। एक बार दो-तीन रोज के लिए राजपुर में टिकना पड़ा। कुमारी सरोज ने महल को केवल नौकरों से भरा देखकर कहा-"अरे, आपके घर तो कोई दिखाई ही नहीं देता। और लोग कहाँ है?"

दिग्विजयनाथ ने उच्छ्वसित वाणी में कहा-इस संसार में मैं अकेला हूँ, कॉलरिज के शब्दों में 'अकेला, अकेला, बिल्कुल. बिल्कुल अकेला, विस्तृत सागर में पूर्णत: एकाकी!' मेरा जीवन भी मानवों और नगरो से दूर,

दूर वन्य वृक्षा ओर ध्वसावशेषो का जीवन है। अपने राम तो रवीन्द्र के 'एकला चलो रे' पथ के विवश यात्री हैं। मैं बिल्कुल अकेला हूँ। न कोई पूछने वाला, न प्यार करने वाला। वह अकस्मात् कुछ रुक गए। कुमारी सरोज की आँखें कह रही थीं ओह, "आप में कवि भी छिपा बैठा है। प्रसगो को कितना अनुकूल बना लेते हैं!" उन्होंने आँखों के वार्तालाप का उत्तर आँखों से ही दिया–"प्रेम प्रत्येक व्यक्ति को कवि बना देता है। प्रेम कविता का जनक है। प्रेम कविता का प्राण है।" इस मूक-वार्तालाप में दोनों व्यक्ति रोमांचित हो उठे। फिर दिग्विजयनाथ आँखें झुकाकर बोले–"एक लडकी है। वह बीमार थी, टी. बी. होने की आशंका थी। हरिद्वार भेज दिया है। गंगाजल, शुद्ध और पवित्र गंगाजल, पिएगी, फलादि खाएगी, प्राकृतिक जीवन व्यतीत करेगी। वहाँ आराम से है। और कोई है नहीं। मैं तो बिल्कुल अकेला हूँ। आपसे तो कई बार यह सब बता....."

सरोज–ओह! हॉ, भूल गई थी।

दिग्विजयनाथ–क्यों न भूलो....?

सरोज–नहीं, अकेली तो मैं भी हूँ।

इसके बाद दो-तीन दिन का जीवन काफी सरस रहा। सरोज ने सब-कुछ देखभाल लिया। मालूम किया कि पुत्री विवाहित है, किन्तु पति को छोड चुकी है या पति उसे छोड़ चुका है। पति को वह जानती थी। वह स्विट्जरलैंड में था। पुत्री मृत्यु के निकट है। और न भी हो, तो क्या? उधर दिग्विजयनाथ ने भी सरोज के विषय में सब-कुछ जान-बूझ लिया। कालान्तर मे कुछ अफवाहें लॉबी आदि में उड़ीं। बातें सुनाई पड़ी–"क्या हुआ? पराशर क्या साधारण पुरुष थे? गेटे की अवस्था तो उनके अन्तिम रोमांस के समय शायद अस्सी वर्ष की थी? भाई, ये तो दिल की चीजें हैं।

और एक दिन अखबारों में सभी ने पढ़ा कि बड़े-बड़े दिग्गज केन्द्रीय नेताओं, मुख्यमंत्री तथा अन्यान्य महामहिम महानुभावों की उपस्थिति मे श्री दिग्विजयनाथ और सुश्री सरोज पंत का उल्लासपूर्ण परिणय हो गया। वर और वधू दोनो को ही बधाइयों के सहस्रो तार मिले, और पत्रकारों ने भी काफी मसाला पाया।

श्री दिग्वजयनाथ और सरोज का मधुर जीवन बड़ा ही आनन्दपूर्ण रहा। सरोज ने व्यवस्थापिका सभा की सदस्यता के अतिरिक्त अन्य सभी पदो से

त्याग-पत्र द दिया। किन्तु श्री दिग्विजयनाथ मंत्री पद पर बने रहे। हाँ वह भी एक महीने के लिए स्विट्ज़रलैण्ड जाना न भूले! वहाँ जाकर सबसे पहला काम जो उन्होंने कहा, वह रणंजयनाथ से मिलना था, जो सभी समाचारों से अवगत थे, और दिग्विजयनाथ से कुछ सप्ताह पूर्व ही यूरोप के स्वर्ग में आ गए थे।

□□□

सुलोचना हरिद्वार आकर बहुत प्रसन्न हुई। मामा सिविल जज थे। नाम था राधाविनोद। स्वच्छन्द विचारों के आदमी थे। अविवाहित जीवन के समर्थक तथा स्वयं अविवाहित। अकेले ही रहते थे। परिवार जन्म-स्थान में था। सात नौकर थे, अच्छा बंगला था, कार थी। बड़े उदार व्यक्ति थे। कुछ ही दिनों में सुलोचना को उनका वात्सल्य प्राप्त हो गया। वह शीघ्र ही स्वस्थ होने लगी । बड़ा नियमित और क्रमवद्ध जीवन व्यतीत करती। प्रकृति-प्रेम उसका जन्मजात संगी था। उसे अब यहाँ काफी सुभीता हो गया। राधाविनोद ने प्रबन्ध कर दिया। सुलोचना नित्य प्रात: पाँच बजे से आठ बजे तक एक नौकर के साथ टहलती। शाम को भी दो घंटे घूमती। उसमें एक अपूर्व कान्ति और शक्ति आ गई। अब उसे मालूम हुआ कि क्यों हेमचन्द्र हरिद्वार की इतनी प्रशंसा किया करता था।

हरिद्वार और उसके आसपास साधुओं की, सन्यासियों की, भक्तों की बड़ी भीड़ रहती। सुलोचना भी नित्य गंगास्नान करती! उसका स्नान प्रात: ही हो जाता। अत: महात्माओं की थोड़ी-बहुत वाणी भी निकलते-बैठते सुन लेती थी।

एक दिन स्नान के लिए सुलोचना काफी दूर निकल गई। स्नान करके ज्यों-ही चलने का उपक्रम किया, कुछ दूर पर एक युवक संन्यासी जाता दिखाई पड़ा। उजाला अधिक न हुआ था। फिर भी, सुलोचना ध्यान से उस संन्यासी की चाल देखती रही। फिर, न जाने क्या सनक आई कि उसके पीछे चल पड़ी। नौकर स्वभाव से परिचित हो गया था। अत: वह कुछ न बोलकर अनुकरण करने लगा।

सन्यासी बहुत दूर चलकर कुछ ऊँच स्थलों पर चढ़ने लगा। कष्टकर होने पर भी सुलोचना ने अनुकरण न छोडा। रास्ते मे एक व्यक्ति ने संयासी को प्रमाण किया। संन्यासी ने कहा–नारायण। सुलोचना की गति अब और तेज हो गई। अन्त में सन्यासी एक कुटिया क सामने पहुँचा, टटिया खोली, और अन्दर घुस गया। सुलोचना भी बढ़ी। धीरे-से नौकर से आग माँगने को कहा। उसने आवाज लगाई–बाबाजी, हम....।

संन्यासी बाहर निकला, नौकर पर दृष्टि पड़ी। फिर वही दृष्टि सुलोचना पर जाकर टिक गई। मुख से निकल ही तो पड़ा–"अरे सुलोचना, तुम? ओह।" और सन्यासी की आँखों से आँसुओं की धारा निकल पडी। नौकर स्तम्भित हो गया। उससे कुछ देर बाहर ठहरने का अनुरोध कर सुलोचना कुटी के अन्दर घुसी। घटों तक आँसुओं और बातो का सिलसिला चला।

सुलोचना–आपका स्वास्थ्य अब आश्चर्यजनक रूप से अच्छा हो गया है। मैं तो पहले पहचान ही न पाई।

हेमचन्द्र–अब न तो कोई चिन्ता है, न खाने-पीने की ही कोई कमी। तब क्यों दुबला बना रहता?

सुलोचना–भोजन इत्यादि के लिए कहाँ....?

हेमचन्द्र–बन्दा प्राधों की उस उक्ति का समर्थक है, जिसमे सभी धन चोरी का माना गया है, सभी सम्पत्ति चोरी है। फिर उसे काहे की कमी होगी? तुम कहोगी, यह अधर्म है। मै कहूँगा, मैं एक धर्म जानता हूँ–कर्तव्य का पालन करना। तुम्हारा धर्म मुझसे पहले कहेगा, नौकरी करो किन्तु नौकरी से मुझे नास्तिक वामपंथी या साम्यवादी कहकर निकाल दिया जाएगा। वैसे मैं निकल-बैठ भी नहीं सकता। यदि झूठ बोलूं और जी-हुजूरी करूँ तो धर्म की रक्षा होती रहेगी, किन्तु गुजारा फिर भी न होगा। इसलिए अन्त में धर्म 'आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत्' का, जिसका अर्थ निर्बलो तथा निरीहों के लिए 'आत्मार्थे जीवनं त्यजेत्' या 'धर्मार्थे जीवनं त्यजेत्' होता है, आदेश देगा। अपने राम उसे स्वयं सबसे बड़ा अधर्म मानते हैं। इसलिए दिन-भर तप और रात्रि भर दिन के लिए भोजनादि का प्रबन्ध होता है। हम हत्या मजबूर होकर ही करते हैं।...तुम कहोगी, यह कानून तोड़ना है, मैं कहूँगा, जब कानून हम निर्धनों, बेकारों और सीधे-सादे लोगों का खुलेआम गला घोंटता है, तब हम उसका गला क्यों न घोटें? जितना हो सकता है, हम भी बदला लेते हैं। क्या

यह रियायत भी हमें न मिलनी चाहिए? वह हँस पड़ा। हँसी में उसकी प्रचण्डता मुखरित हो उठी।

सुलोचना यह सब सुनकर स्तम्भित हो गई। उठकर चलने को ही थी कि सात-आठ सम्भ्रांत तथा सभ्य पुरुष कुटिया में दाखिल हो गए। किंकर्तव्यविमूढ़-सी बैठी रही। आगन्तुकों ने नमस्कार किया। एक बोला-"स्वामी जी, आप कौन...?"

हेमचन्द्र--आप प्रसिद्ध मंत्री श्री दिग्विजयनाथ की पुत्री हैं-श्री सुलोचना एम. ए.।" सुलोचना ने सभी को अभिवादन किया।

इसके बाद विस्फारित-नेत्र मित्र-मण्डली का परिचय सुलोचना को कराया गया। उसे ज्ञात हुआ कि इस मण्डली में कोई एम. ए. है, कोई बी. ए., तो कोई एल-एल. बी.। अकेले ब्रजेन्द्रशंकर इस दिशा में पिछड़ा है। किन्तु वही नेता है।

ब्रजेन्द्रशंकर बोला-"स्वामीजी, आप देवीजी से यदि स्वयं जाकर मिल लिया करते, तो अच्छा रहता। मुझे खतरे के आसार दिखाई पड़ते हैं। आपको ही खतरा होगा, हमें नहीं, क्योंकि हम खतरे को पहचानते हैं। होगा। मैं जानता हूँ कि आप रणंजयनाथ के द्वारा गिरफ्तार किए जाएँगे। वह स्विट्जरलैंड से लौट आए हैं और इसी टोह में लगे हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि रणंजयनाथ का निर्वाण मेरी पिस्तौल द्वारा ही होगा, और मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मैं आपको जेल से निकाल लाऊँगा। किन्तु देवीजी का आना बुरा हुआ। देवीजी कुछ न करेंगी, यह जानता हूँ। फिर भी यह सब होगा। देवीजी का अबोध नौकर भी कुछ न बताएगा फिर भी यह सब होगा। अच्छा, तो मैं जाता हूँ, समय पर ही मिलूँगा। फिर कहता हूँ, यह बुरा हुआ।" और वह तीर की तरह बाहर निकल गया।

□□□

सन्यासी और सुलोचना का मिलन प्राय: नित्य होने लगा। दोनों ही यह न चाहते थे, पर दोनों के द्वारा ही यह हो जाता था। संन्यासी ख्याति-प्राप्त न थे। अतः भक्तों की भीड़ का भी प्रश्न न था। रोज मुलाकात होती और

साहित्यिक तथा राजनैतिक विषयो पर रोचक वाद विवाद हाते। दोना ही सन्तुष्ट एव आनन्दित थे, दोनों की जवानी जवान होती दृष्टिगोचर होती थी, सरसता का मीठा अनुभव दोनों को तरल किए था।

सुलोचना सदैव इस बात का ध्यान रखती थी कि कोई उसके पीछे आकर कुटिया न देख सके। यही कारण था कि वह ब्राह्ममुहूर्त तक वहाँ पहुँची जाती और ऐसे समय लौटती, जब भीड़-भाड़ न रहती थी। दो-बार वह अपने पीछे किसी को आते देखकर रुक गई थी। एक बार घर लौट गई। लौटते समय उसका भ्रम दूर हो गया। पीछे आने वाला व्यक्ति एक संन्यासी ही था। फिर भी वह लौट ही गई।

दूसरे दिन सुलोचना विह्वलतापूर्वक कुटी की ओर चली। ऐसा लगता था जैसे साल-भर बाद मिलने जा रही है। उसके दिमाग में कल न जाने के ऊपर प्रश्नोत्तरों का कम चल रहा था। कुटी के पास आ जाने पर उसकी दृष्टि पीछे गई। देखा, एक व्यक्ति कुछ दूर पर धीरे-धीरे चला आ रहा है। सन्न रह गई। आशंका हुई कि रणंजयनाथ तो नहीं है? किन्तु इतने समय इस आशंका का पुष्ट होना कठिन हो गया। ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि यह वही कल वाला संन्यासी ही था। कुटी मे पहुँचने पर हेमचन्द्र से बतलाया। वह बोला--"होगा कोई। मुझे इतना डर नहीं है। तुम्हारे मिलन के लिए मैं मृत्यु का मूल्य भी स्वल्प समझता हूँ।...अधिक पुलिस यहाँ आकर मुझे नहीं पकड़ सकती, मेरा भी सक्रिय गुप्तचर-विभाग है, भागने का प्रबन्ध भी है। एक-दो व्यक्ति यहाँ आकर केवल प्राण खो सकते हैं। मैं वर्तमान से इतना सन्तुष्ट हूँ कि भविष्य की चिन्ता करने का अवकाश नहीं है।"

वह यह कह ही रहा था कि सहसा कुछ खटक हुई और दरवाजे खुल गए। हेमचन्द्र आतुरता से उठा और पिस्तौल लकर खड़ा हो गया। देखा, तो सामने संन्यासी की वेशभूषा मं हाथ में भरी पिस्तौल लिए रणंजयनाथ खडे थे। हेमचन्द्र का चेहरा एकाएक पीला पड़ गया। किन्तु क्षण भर में ही वह सम्भल गया। फीकी हँसी से उसका मदिर आनन विचित्र हो गया। सुलोचना कुछ पल तो मूक और स्तम्भित यह दृश्य देखती रही, फिर चीत्कार करते हुए पृथ्वी पर गिर गई। तीन पुलिस अफसर और आ गए।

रणजयनाथ ने ललकार कर अंग्रेजी में चेतावनी दी-"हाथ उठाओ!"

सुलोचना की ओर देखत हुए हेमचन्द्र बोला—लो, पर जिसे तुम अप
सफलता तथा मेरे अन्त का कारण समझते हो, वह तुम्हारी असफलता त
मेरी सफलता का कारण बनेगी। मुझे खेद है, तुम कर्तव्य-पालन करने
लिए यहाँ नहीं आए, द्वेष-शान्ति के लिए आए हो।''

यह कहकर उसने अपने हाथ उठा दिए।

(समाप्त)